योगविद्या

वर्ष 8 अंक 12
दिसम्बर 2019
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2019

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या: 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती महाराज

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

थोड़ा-सा मंत्र लिखो, थोड़ा-सा ध्यान करो

लिखित जप के अनेक लाभ हैं जिन्हें पूरी तरह से अभिव्यक्त कर पाना सम्भव नहीं। हृदय की शुद्धता और मन की एकाग्रता के अतिरिक्त इससे शारीरिक स्थिरता तथा इन्द्रियों पर भी नियंत्रण प्राप्त होता है, विशेषकर नेत्र और जिह्वा पर। साथ ही तितीक्षा और सहनशीलता में वृद्धि होती है। आप शीघ्र ही मानसिक शान्ति प्राप्त कर लेते हैं।

ध्यान के भी अनेक लाभ हैं, यथा शान्ति, सन्तोष, निर्भयता, आध्यात्मिक आनन्द, सांसारिक संघर्षों में मन की समता एवं स्थिरता, प्रेरणा, अन्तर्प्रज्ञा, सात्त्विक गुणों का उपार्जन तथा क्रोध, दम्भ, राग एवं द्वेष जैसे दुर्गुणों का उन्मूलन। अगर आप आधे घण्टे तक ध्यान कर सकते हैं तो इस ध्यान की शक्ति से आप आसानी से एक सप्ताह तक शांति एवं धैर्य के साथ जीवन के संघर्षों का सामना कर सकते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

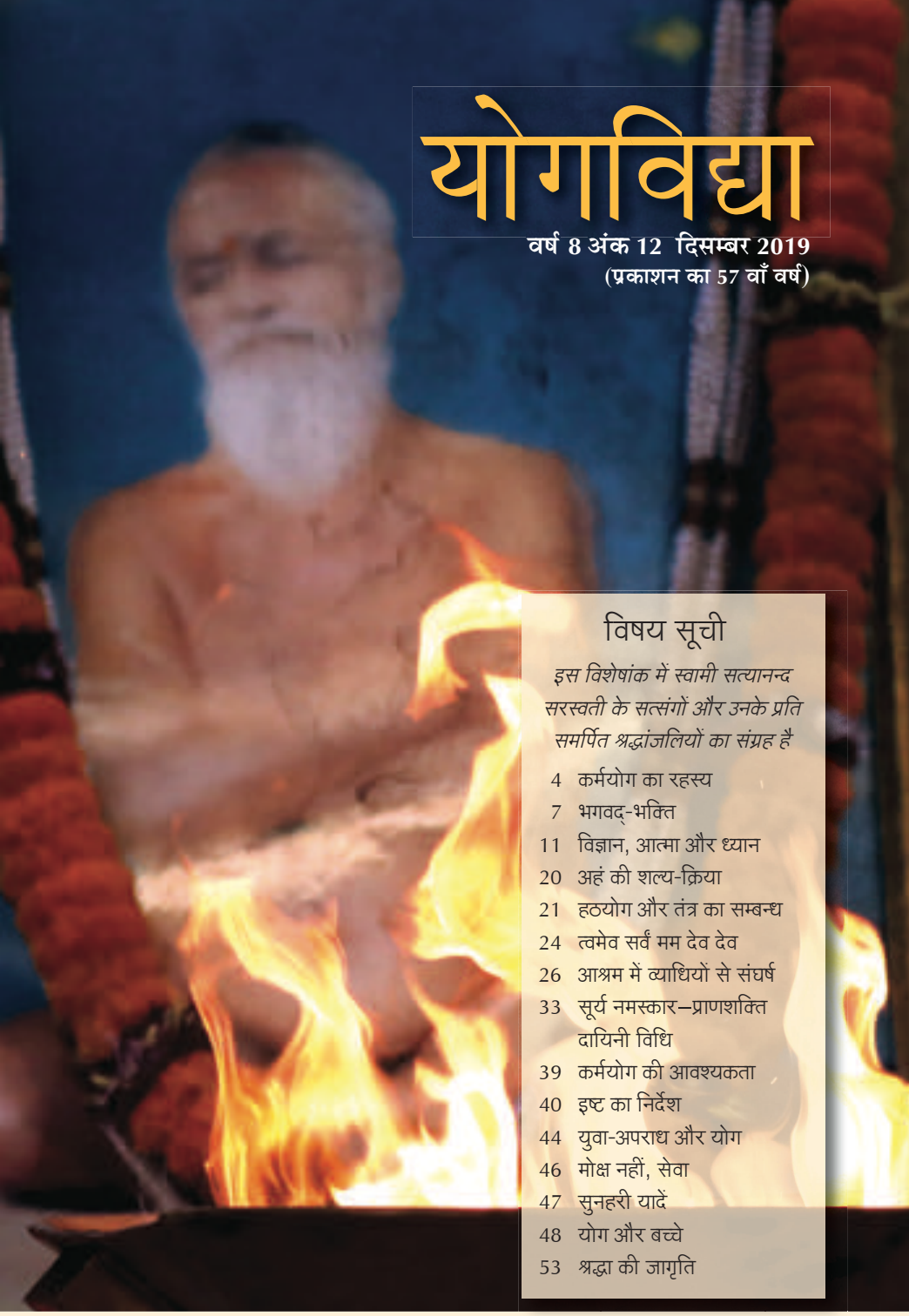

योगविद्या

वर्ष 8 अंक 12 दिसम्बर 2019
(प्रकाशन का 57 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 कर्मयोग का रहस्य
7 भगवद्-भक्ति
11 विज्ञान, आत्मा और ध्यान
20 अहं की शल्य-क्रिया
21 हठयोग और तंत्र का सम्बन्ध
24 त्वमेव सर्वं मम देव देव
26 आश्रम में व्याधियों से संघर्ष
33 सूर्य नमस्कार–प्राणशक्ति दायिनी विधि
39 कर्मयोग की आवश्यकता
40 इष्ट का निर्देश
44 युवा-अपराध और योग
46 मोक्ष नहीं, सेवा
47 सुनहरी यादें
48 योग और बच्चे
53 श्रद्धा की जागृति

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

कर्मयोग का रहस्य

कर्मयोग का तात्पर्य उन कर्मों से है, जिन्हें करने में न तो कर्तृत्व की भावना रहती है और न ही फलाकांक्षा। यदि हम किसी को पानी का एक गिलास देते हैं तो बदले में उससे और कुछ नहीं तो 'धन्यवाद' की अपेक्षा रखते ही हैं। यह मनुष्य का स्वभाव है। यदि हम किसी को प्रणाम करते हैं और प्रत्युत्तर में वह हमें प्रणाम नहीं करता, तो हम दूसरों से उसकी शिकायत करते हैं कि 'मैंने अमुक व्यक्ति को प्रणाम किया, किन्तु वह इतना घमण्डी है कि हमें प्रणाम करने में अपनी मानहानि समझता है।' यह राजसिक कर्म है।

कर्म के तीन भेद हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सत्त्व का अर्थ है राजसिक एवं तामसिक कर्मों की शुद्धता एवं पवित्रता। सात्त्विक कर्म तुमको भगवतोन्मुखी करते हैं। एक अज्ञानी कर्म करते हुए सोचता है, 'मैं कर रहा हूँ', जबकि एक योगी सोचता है, 'प्रकृति सब कुछ करा रही है'। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि—ये सब प्रकृति से उत्पन्न उपकरण हैं। जब तुम कहते हो कि मैं देखता हूँ, तो तुम कर्मबन्धन में बँध जाते हो। 'नेत्र देखते हैं, मैं साक्षी भाव हूँ', यह ज्ञानी की भावना है। भक्त की भावना ऐसी होती है कि सभी कुछ ईश्वर करता है, मैं कुछ नहीं करता हूँ। शरीर आदि उसके हाथों के यन्त्र हैं। 'सभी कुछ प्रकृति करती है, मैं साक्षी मात्र हूँ' यह योगी की भावना है।

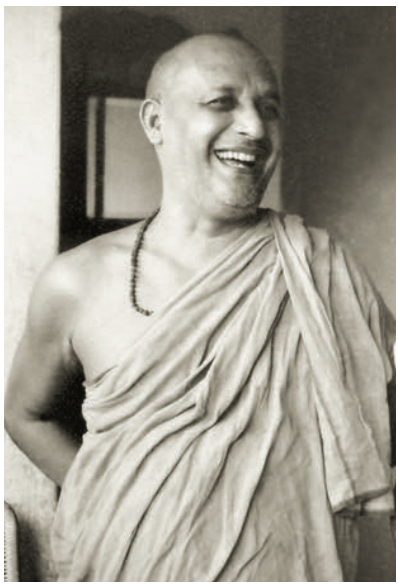

उपर्युक्त भावनाओं से भिन्न अन्य सभी भावनाओं में मनुष्य को पुनर्जन्म का कष्ट सहना अनिवार्य है, क्योंकि वहाँ कर्तृत्व की भावना है तथा फलोपभोग की लालसा है। सूक्ष्म शरीर पर प्रत्येक कार्य की संस्कार रूप में मुहर लग जाती है। यदि तुमको क्रोध आता है तो क्रोध के संस्कार तुम्हारे सूक्ष्म मानस-पटल पर अंकित हो जायेंगे। बहिर्जगत् में क्रोध की तरंगें तरंगित होती हैं, और ये क्रोध की तरंगें शून्य में व्याप्त होकर दूसरों को प्रभावित करती हैं।

कर्मयोग के अभ्यास से मन के विकार नष्ट होते हैं और चित्त शुद्धि का लाभ होता है। मन के विकार क्या हैं? स्वार्थ,

मिथ्याभिमान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, घृणा आदि मन के विकार हैं। कर्मयोग के द्वारा मन दिव्य ज्योति को ग्रहण करने के योग्य बन जाता है। मानव जाति की सेवा नारायण की सेवा है, क्योंकि मानव-जाति ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है। कर्म, यदि अहंकारशून्य हों, निष्काम भाव से फलों की आशा को त्यागकर यथार्थ भाव से किये जायें, तो तुमको उन्नत बनाते हैं। इस भाव से किए हुये सारे कर्म, यहाँ तक कि खाना, पीना, उठना-बैठना, वार्तालाप करना भी ईश्वर की पूजा बन जाते हैं।

लेकिन संसारी लोग क्या करते हैं? घर के प्रवेश-द्वार को बन्द करके भीतर बैठकर उत्तम श्रेणी का दूध पीते हैं। संयोगवश यदि कोई मित्र आ गया, तो उसे द्वितीय श्रेणी का दूध देते हैं। अपने लिए उत्तम भोजन रखकर घर के नौकरों को घटिया किस्म का भोजन देते हैं।

दूसरों को हमेशा अच्छी वस्तुएँ देनी चाहिए। कर्मयोग तुम्हारे हृदय को विशाल बनाता है, प्रभु-साक्षात्कार के मार्ग की बाधाओं को नष्ट करता है और तुमको अन्तर्ज्ञान देता है। अन्तर्ज्ञान क्या है? बुद्धि क्या है? सहज ज्ञान पशु-पक्षियों में होता है। अन्तर्ज्ञान परम चेतना है। कर्मयोग का अभ्यास क्षमा, दया, करुणा, विश्वप्रेम और आत्मनिग्रह तथा आत्मसंयम प्रदान करता है।

कर्मयोगी निमित्तभाव से कर्म करता है, अत: अन्तर्ज्ञान प्राप्त करता है। भक्त भी समझता है कि वह भगवान के हाथों में एक निमित्त मात्र है। उसका शरीर एवं सभी इन्द्रियाँ ईश्वर की हैं। वेदान्ती साक्षी भाव से कर्म करता है–'मैं साक्षी मात्र हूँ, मैं न कर्त्ता हूँ, न भोक्ता।' जब तुम शरीर और इन्द्रियों द्वारा सम्पादित कर्मों के साक्षी मात्र रहते हो, तो तुम कर्मों से अप्रभावित रहते हो, ठीक उसी प्रकार जैसे जल में रहते हुए भी कमल पत्र जल से निर्लिप्त रहता है। जल पर रहते हुई भी नौका जल से अप्रभावित रहती है। जब तुम अपने को शरीर समझते हो, तभी तुम कर्म-बन्धन में फँस जाते हो। अनासक्ति क्या है? 'मैं शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि का साक्षी हूँ। सभी कर्म प्रकृति करती-कराती है। मैं द्रष्टा आत्मा हूँ। मैं साक्षी मात्र हूँ। कर्म तो शरीर, इन्द्रियों और मन का व्यापार है।'

ज्ञानी दूसरों की सेवा करते समय दूसरों में अपने को ही देखता है, जबकि भक्त दूसरों की सेवा करते समय उनमें ईश्वर को देखता है। भक्त और ज्ञानी के भावों में यही अन्तर है। भक्तयोगी भवसागर को नौका द्वारा पार करता है। यह नौका ईश्वर-भाव है। वेदान्ती उसी भवसागर को तैर कर पार करता है।

अब तुम समझ गये होगे कि किस प्रकार संसार में रहते हुए अपने समस्त कर्तव्यों और धर्मों का पालन करते हुए भी सांसारिकता से अलग रहा जा सकता है। गीता की मुख्य शिक्षा भी यही है। प्राय: सांसारिक लोग तर्क-वितर्क करते हैं कि सन्त जन और ज्ञानी-वेदान्ती जन भी हम लोगों की ही भाँति भोजन करते हैं, फिर वे संन्यासी कैसे और हम संसारी कैसे? क्या संसारी जनों की दृष्टि में, सन्त बनने

के लिए संन्यासियों को भोजन नहीं करना चाहिए? क्या उन्हें सर के बल चलना चाहिए, अथवा उन्हें धरती से ऊपर पक्षियों की तरह गगनगामी बनना चाहिए? क्या तभी तुम विश्वास करोगे कि वह सच्चा संन्यासी है? तब एक मायावी जादूगर और एक आत्मसाक्षात्कार प्राप्त ज्ञानी में क्या अन्तर रह गया? नहीं, नहीं, ज्ञानी के शरीर पर भी प्रकृति कार्य करती है।

यद्यपि बाह्य दृष्टि से संसारी और संन्यासी, दोनों के कार्य-कलापों में समता दृष्टिगोचर होती है, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। संसारी और संन्यासी में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि संसारी अपने को शरीर समझता है। उसे देहाध्यास है, वह समझता है कि मैं शरीर हूँ, किन्तु ज्ञानी अपने को शरीर नहीं समझता। वह शरीर से तादात्म्य सम्बन्ध नहीं रखता। भगवदिच्छा को पूर्ण करने के लिए वह शरीर को एक निमित्त मात्र समझता है, क्योंकि वह यह जानता है कि पंचतत्त्वों से निर्मित यह शरीर प्रकृति पर आश्रित है। इसीलिए वह शरीर द्वारा होने वाले कर्मों का कर्त्ता अपने को नहीं समझता, बल्कि प्रकृति को ही कर्मों का ईश्वर समझता है, और इसी कर्तृत्व-भावना के अभाव के कारण वह कर्मों से प्रभावित नहीं होता। जबकि एक संसारी अपने आपको कर्त्ता समझता है और फल की आशा भी रखता है। इसीलिए वह सुख-दु:ख, प्रसाद-विषाद, राग-द्वेष जैसे द्वन्द्वों का विषय बनता है। गीता के द्वितीय अध्याय में तुमने स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का वर्णन पढ़ा होगा। स्थितप्रज्ञ अपनी इन्द्रियों को पूर्णतया अपने नियन्त्रण में रखता है।

इन्द्रिय-निग्रह में बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञान का इस्तेमाल आवश्यक है। प्रकृति के साथ संघर्ष में अतिशयता नहीं होनी चाहिए। जीभ-नियंत्रण का तात्पर्य यह नहीं है कि तुम आहार ही त्याग दो। निद्रा-नियन्त्रण का तात्पर्य यह नहीं कि तुम पूर्णतया निद्रा लेना छोड़ दो। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इन्द्रिय-निग्रह के अभ्यास में बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञान का उपयोग करना चाहिए। सर्दी-गर्मी पर विजय प्राप्त करने से यह मतलब नहीं निकलता कि तुम शीतकाल की मध्यरात्रि में ठण्ढे पानी में पूरी रात खड़े रहो और ग्रीष्म की जलती दोपहरी में तप्त बालू पर। जरूरत यह है कि तुम्हें अपने शरीर व अपनी प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए। तुम्हें अपने मन का ज्ञान होना चाहिए तथा ज्ञान होना चाहिए अपने अन्दर छिपी हुई वासनाओं व तृष्णाओं का।

कर्म करते समय उसमें लिप्त नहीं होना चाहिए। कर्म करते जाना चाहिए, परन्तु उसका फल हमारे अनुकूल होगा या प्रतिकूल, इधर विचार-दृष्टि भी नहीं करनी चाहिए। अच्छा होने पर असन्तुलित हर्ष न हो और बिगड़ जाने पर असन्तुलित शोक न हो, ऐसी समानता स्वभाव में ले आना ही निष्काम कर्मयोग है। यही सबसे श्रेष्ठ योग है। हृदय में रहने वाले सत्त्व, रजस् और तमस् के त्रिगुणों को साम्यावस्था में ले आना ही कर्त्तव्य है। इसी के लिए सारे साधन किये जाते हैं।

भगवद्-भक्ति

हम लोग ईश्वर-लीला की महत्ता को कम न समझें। यह सृष्टि उस ईश्वर की है जो बहुत ही नटखट है। उसके बारे में जो भी कहो, जैसा भी कहो, वह असत्य नहीं है, किन्तु समग्र भी नहीं। भगवान के बारे में जो भी बोलो, वह गलत नहीं, मगर काफी भी नहीं है। अन्त में 'नेति-नेति' कहना पड़ेगा। भगवान का रूप होता है और वह भगवान निराकार भी है।

मिट्टी का रूप क्या होता है? दिया, सकोरा, घड़ा, खिलौना—मिट्टी का अपना कोई रूप नहीं है, जिस रूप में बना दो, वही उसका रूप है। सोने का क्या

रूप है? हार या कँगन सोने का रूप नहीं है, तुमने उस आकृति को एक नाम दिया, मगर वह सोने का रूप तो नहीं। सोना रूप रहित है, मिट्टी रूप रहित है। वैसे ही परमात्मा रूप रहित है, मगर उसे किसी ने कृष्णजी बना दिया, किसी ने रामजी बना दिया, वही उनका रूप है। रामचरितमानस में शंकरजी ने पार्वती से कहा है कि भक्तों के प्रेमवश भगवान विभिन्न सगुण रूप धारण किया करते हैं।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज सोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे। जल हिम उपल विलग नहीं तैसे ॥

किसी ने भगवान को योगी के रूप में देखा, किसी ने बावले के रूप में देखा, किसी ने उनको शादी करते हुए देखा, किसी ने भूत-पिशाच की तरह देखा, गाँजा पीकर मस्त पड़े देखा। परमात्मा के सभी रूप होते हैं। उनको तुम सब रूपों में देखो। तुम उन्हें देवी के रूप में देखो, भयंकर, वीभत्स, सुन्दर, साधु या बालमुकुन्द के रूप में देखो, धनुर्धारी राम या वंशीधर कृष्ण के रूप में देखो, किसी भी रूप में देख सकते हो। भगवान को जिस रूप में तुम देखना चाहो, उस रूप में उनकी उपासना करो और वही रूप प्रकट होगा। रामचरितमानस में तुलसीदासजी कहते हैं–

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

कुछ लोग कह सकते हैं कि यह रूप काल्पनिक है, पर आखिर कल्पना क्या है? संसार में कोई भी चीज कल्पना नहीं है, हर एक चीज सत्य है। हम तो अपने अनुभव से थोड़ा-बहुत बोलते हैं, अभी हमें पूरा अनुभव तो नहीं हुआ है, लेकिन हमें ऐसा लगता है कि भगवान तो अपने दोस्त हैं, सखा हैं, जो हमेशा अपना हित करते हैं, मगर हम ही उनको भूल जाते हैं। स्वामी शिवानन्द जी महात्मा बिन्दु का एक भजन गाया करते थे–

जीवन का मैंने सौंप दिया, सब भार तुम्हारे हाथों में ।
उद्धार पतन अब मेरा है, सरकार तुम्हारे हाथों में ॥
हम तुमको कभी नहीं भजते, तुम हमको कभी नहीं तजते ।
अपकार हमारे हाथों में, उपकार तुम्हारे हाथों में ॥
हममें तुममें है भेद यही, हम नर हैं तुम नारायण हो ।
हम हैं संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ॥
दृग बिन्दु बनाया करते हैं, इक सेतु विरह के सागर में ।
मझधार हमारे हाथों में, पतवार तुम्हारे हाथों में ॥

भगवान हैं और हमेशा सखा की तरह अपने साथ रहते हैं। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि भगवान श्वासों के श्वास हैं, प्राणों के प्राण हैं, जीवन की जीवनी शक्ति हैं और वे ही हमारी एकमात्र वास्तविकता हैं। संसार में यही एक सत्य है। करनेवाला भी वही है, करानेवाला भी वही है।

कुछ लोग अपने जीवन की असफलताओं के कारण भगवान को दोषी ठहराते हैं। वे अपने आपको संकीर्णता के कारण पृथक् किये रहते हैं और इसलिए बिजली का करेंट प्रवाहित नहीं हो पाता। माया की वजह से ही वे पृथक् रहते हैं। पृथकता के आधार माया को हटा दो, तो भगवान की विद्युत धारा प्रवाहित होने लगेगी। इस प्रकार धीरे-धीरे भगवत्-प्रेम प्रगाढ़ और गहरा होता जाता है। जिस तरह एक आशिक अपनी माशूका को सब तरफ देखता है, सब जगह उसको वही दिखाई देती है, वैसे ही एक भक्त भगवान को सब जगह देखता है। मुझमें, तुझमें, सब लोगों में।

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

जहाँ देखो वहाँ राम—जीवन का असली उद्देश्य भी यही है। जीवन में बाकी सब तो करना पड़ता है। पढ़ना पड़ता है, नौकरी करनी पड़ती है, पैसा कमाना पड़ता है, इच्छाओं को पूरा करना पड़ता है, लेखा-जोखा पूरा करना पड़ता है। भगवान की इच्छा करनेवाले व्यक्ति को इन सब चीजों के बारे में भी सोचना चाहिए। यह नहीं कि भगवान को प्राप्त करने के लिए घर-परिवार छोड़ दिया जाए, बल्कि विचार करना चाहिए कि भगवान क्या है और यह विचार मन में प्रश्न की तरह सदा चलना चाहिए कि किस प्रकार उनके साथ सम्बन्ध स्थापित हो। अगर 'मैं' 'वह' हूँ, तो उसे कैसे जानें?

अगर मैं भगवान का अंश हूँ, तो वह अनुभव मुझे क्यों नहीं हो रहा है? अनुभव कैसे होगा? हम लोग भूल चुके हैं कि हम भगवान के अंश हैं। जैसे सिर में चोट लगने से आदमी सब भूल जाता है, अपने माँ-बाप के नाम का भी उसे पता नहीं रहता, ऐसे ही हम भी भूल गये हैं, विस्मृति हो गयी है। यह जीवन का सार है। नौकरी वगैरह जीवन का सार नहीं है। 20-25 साल तक नौकरी है, फिर एक दिन जायेगी। यह तो केवल अहंकार का खेल है, जिसमें हम लोग पड़े रहते हैं। जैसे सूअर को विष्ठा खाने में मजा आता है, वैसे अपने को चक्कर खाने में मजा आता है। यह मत सोचो कि निन्दा कर रहा हूँ, क्योंकि संसार में तो सबको रहना है। संसार कीचड़ है, कमल की तरह रहना हो तो कमल बनो। कमल भी तो कीचड़ में ही पैदा होता है न? जोंक बनना है तो जोंक बनो और कमल बनना है, तो कमल बनो, लेकिन कीचड़ में ही रहना है।

अगर भगवान सबसे प्रेम करते हैं, तो फिर पीड़ा क्यों होती है?

मेरी माँ मुझसे प्यार करती है, पर मेरे शरीर में यदि घाव हो जाए तो वही उसका ऑपरेशन भी कराती है। ऑपरेशन के समय जब मैं रोऊँगा और मुझे पीड़ा होगी तो क्या यह कहोगे कि माँ निर्दयी है? माँ ही तो ऑपरेशन करवा रही है। तुलसीदास जी कहते हैं–

जदपि प्रथम दु:ख पावइ रोवइ बाल अधीर ।
व्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि ।
तुलसीदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥

नारदजी की कथा जानते हो न? वे विवाह करना चाहते थे, पर भगवान ने उन्हें बन्दर का चेहरा दे दिया। उनका विवाह नहीं हो सका। जब श्रीराम वन में सीता जी को खोजते फिर रहे थे तो नारदजी वहाँ पहुँचे। उन्होंने भगवान से पूछा कि आप ने मेरा विवाह क्यों नहीं होने दिया। तो भगवान ने क्या उत्तर दिया?

तब विवाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखई महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाइ ॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीत करई नहिं पाछिल बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी ॥

भगवान तो माँ की तरह अपने अमानी दास की रक्षा करते हैं। पीड़ा आखिर है क्या? पीड़ा एक तरह से अनुग्रह है। प्रत्येक पीड़ा एक दूसरे रूप में अनुग्रह ही है। हम हमेशा पीड़ा से भागते हैं, उसे नहीं चाहते हैं, लेकिन पीड़ा एक शुद्धि की प्रक्रिया है, बुरे कर्मों का नाश है, जैसे तुम शरीर के किसी सड़े हुए अँग को काट देते हो। मनुष्य पीड़ा नहीं चाहता है, इसीलिए वह पीड़ा से दु:खी होता है। जो पीड़ा में ही आनन्द लेते हैं, वे पीड़ा आने पर खुश होते हैं। पीड़ा और दु:ख एक ऐसी भट्ठी है, जिसमें प्रकृति मनुष्य को तब डालती है जब वह उसे एक महान् पुरुष बनाना चाहती है। जो पीड़ा सह लेते हैं, वे पुरुषोत्तम हो जाते हैं। ईसा मसीह को कितना कष्ट हुआ था, महात्मा गाँधी को कितना दु:ख हुआ, रामजी ने कितना दु:ख भोगा था। इसलिए जिस आदमी को किसी प्रकार का दु:ख होता है उसे बराबर सोचना चाहिए कि भगवान उसे जगा रहे हैं। जब हम परमात्मा को याद करते हैं, दु:ख को उसकी कृपा मानते हैं, तो वही हमें दु:ख सहने की शक्ति भी देता है।

विज्ञान, आत्मा और ध्यान

यह हर्ष का विषय है कि विज्ञान और धर्म, जो पहले विपरीतधर्मी समझे जाते थे, अब समीप आते जा रहे हैं। विज्ञान में योग की प्रणालियों से लाभ उठाने के लिए अध्ययन हो रहे हैं और योग ने वैज्ञानिक रीति से अपनी बातें कहनी शुरू कर दी हैं। वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग भी योग के क्षेत्र में किया जाने लगा है। विज्ञान अब केवल भौतिक सत्ता से सम्बद्ध न रहकर सत्ता के आध्यात्मिक पहलुओं को खोजने में अधिकाधिक सक्रिय हो गया है। विज्ञान अब अवश्य ही योग, धर्म तथा आध्यात्मिक मार्गों की सम्भावनाओं तथा सत्यों को उद्‌घाटित करेगा।

गत शताब्दी के अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि वे इतना अधिक जान गये हैं कि अनुसंधान के क्षेत्र में अब कुछ करने को शेष नहीं रहा। लेकिन तभी आइन्सटाइन और फ्रॉयड जैसे उदारमना वैज्ञानिक आए, जिन्होंने अन्वेषण तथा अनुसंधान की नई दिशाएँ दिखाईं। इसी कारण अब वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं के प्रति बहुत सजग हैं और इस बात के प्रति भी सतर्क हैं कि कहीं वे आत्मतुष्ट होकर न बैठ जाएँ। यही कारण है कि आध्यात्मिक अनुभवों के तथ्य को जाँचने के लिए अब विभिन्न शोध किए जा रहे हैं। आश्चर्य है कि अभी तक विज्ञान ने इस क्षेत्र में शोध नहीं किया है, जबकि फ्रॉयड ने निम्नतर मन के सम्बन्ध में अपनी खोज पचास वर्ष पूर्व ही प्रकाशित कर दी थी, और संत-ऋषि-मुनि, उच्चतर मन तथा उच्च स्तरीय चेतना की चर्चा न जाने कब से करते आए हैं।

शरीर पर पड़ने वाले ध्यान के प्रभावों पर शोध करना आधुनिक विज्ञान का एक अत्यन्त रुचिकर विषय माना जाता है। यद्यपि ये शोध अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही हैं, तथापि ये ध्यान से प्राप्त अनेक शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभों को प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसी सम्भावना प्रतीत होती है कि निकट भविष्य में विज्ञान लोगों को आध्यात्मिक पथगामी बनाने में बहुत अधिक सहायक होगा। अभी बायोफीडबैक जैसे यंत्र का उपयोग ध्यान की उच्चतर अवस्था प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। आधुनिक मनोविज्ञान कई अर्थों में व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य से एक साथ सम्बन्ध रखता है। योग और मनोसंश्लेषण, दोनों का उद्देश्य एक ही है—सम्पूर्ण सत्ता का एकीकरण, तदनन्तर आत्म-दर्शन या आत्म-साक्षात्कार।

अब हम उन क्षेत्रों की चर्चा करेंगे जहाँ योग और विज्ञान समान धरातल पर कदम रख रहे हैं। हजारों वर्ष पूर्व के सांख्य-दर्शन तथा आधुनिक मनोविज्ञान में आश्चर्यजनक साम्य है। योग में मनुष्य की सम्पूर्ण प्रकृति का महत्त्व है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, अतीन्द्रिय एवं आध्यात्मिक, सभी पहलू शामिल हैं। योगाभ्यास से इन सभी पक्षों का विकास होता है अथवा यह कहें कि इससे प्रत्येक व्यक्ति की सुषुप्त क्षमताएँ विकसित होती हैं। यथार्थ रूप में वही आध्यात्मिक पथ है जहाँ व्यक्तित्व के सभी पक्षों का समग्र विकास हो और मनुष्य को पूर्णता प्राप्त हो।

सामान्यत: मनोविज्ञान व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले कई पक्षों की अवहेलना करते हुए मात्र एक सीमित दायरे में ही कार्य करता रहा है। उदाहरणार्थ, पाश्चात्य मनोविज्ञान के जन्मदाता फ्रॉयड की मान्यता थी कि मनुष्य की सर्वप्रमुख मनोवृत्ति है मैथुन तथा आत्मसुरक्षा। देखा जाए तो यह मनुष्य की मानसिकता तथा आकांक्षाओं का बहुत ही संकीर्ण अवलोकन तथा आकलन है। फिर भी आज तक अनेक मनोवैज्ञानिक इसी तथ्य को मानते आ रहे हैं। युंग निश्चय ही अपने विचारों में बहुत प्रगतिशील थे और उन्होंने माना कि मनुष्य की क्रियाएँ ऐसे गूढ़तर तथ्यों से प्रभावित होती हैं, जिनके विषय में अधिकांशत: वह अनभिज्ञ ही रहता है।

सभी मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं ने मनुष्य को उसके अस्तित्व को प्रभावित करने वाले वातावरण तथा आध्यात्मिकता जैसे अन्य पहलुओं से अलग रखकर समझा है। इसीलिए मनोविज्ञान वस्तुत: कभी ऐसा कुछ नहीं दे सका जिससे मनुष्य की थोड़ी-सी भी सही व्याख्या हो। इसके फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित मनोवैज्ञानिक चिकित्सा बहुत सफल नहीं हो सकी। कुछ हद तक वे व्यक्ति की सहायता कर सकीं, परन्तु उनसे व्यक्ति को प्रसन्नता अथवा विकास की प्राप्ति नहीं हुई।

सम्भवत: युंग ही ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने मनोविज्ञान को मनुष्य के अस्तित्व के समग्र स्वरूप को देखने के लिए प्रेरित किया। हालाँकि उनके विचारों को बृहद् स्तर पर अन्य मनोवैज्ञानिकों ने हाल ही में गंभीरता से लेना आरंभ किया

है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उन्हीं के सिद्धान्तों के आधार पर अनेक आधुनिक विचारधाराएँ विकसित हुई हैं, जैसे विकास मनोविज्ञान, जेस्टाल्ट मनोविज्ञान, जीव मनोविज्ञान, आदि। ये सभी यौगिक विचारधारा के बहुत समीप हैं तथा मनुष्य के अस्तित्व को बहु-आयामी मानते हैं। इन सबका मानना है कि मनुष्य के अस्तित्व को सही ढंग से समझने के लिए हमें वस्तुपरक तथा विषयपरक, सभी पक्षों पर ध्यान देना होगा, परन्तु यदि उसका कोई भी पक्ष छूट जाए, जैसे आध्यात्मिक पक्ष, तो अधूरा चित्र ही सामने आएगा।

आधुनिक मनोविज्ञान प्रत्येक मनुष्य के भीतर सुप्त सम्भावनाओं को विकसित करने की बात पर बहुत बल देता है। यह मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के क्रमिक उद्घाटन एवं विकास की प्रक्रिया है। योग का भी यही उद्देश्य है, अन्तर केवल इतना है कि योग इस क्रम को आत्म-साक्षात्कार कहकर संबोधित करता है, जिसमें मनुष्य के भीतर व्याप्त सभी संभावनाएँ अपने चरमोत्कर्ष पर होती हैं, और उसके बाह्य वातावरण तथा आंतरिक अस्तित्व के बीच पूर्ण समस्वरता होती है।

मनोविज्ञान की विगत मान्यता यह थी कि मनुष्य रूढ़ प्रवृत्तियों में मानसिक रूप से बँधा हुआ है। अत: यह मान लिया गया कि मनुष्य को अनन्त काल तक इन प्रवृत्तियों को तुष्ट करते रहना चाहिए। इन मूलभूत आवश्यकताओं की निर्बाध तथा निरन्तर तुष्टि यद्यपि आवश्यक है, किन्तु यह उसके तनाव तथा असंतोष को कुछ काल के लिए ही कम करती है। ये किसी रूप में व्यक्ति के जीवन से तनाव का सम्पूर्ण निर्मूलन नहीं करती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान एवं योग मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर जोर देना चाहते हैं ताकि वह इस तनाव और शरीर की क्षणिक तुष्टि के पुराने जाल से निकल सके तथा संतुष्टि के अधिक उन्नत रूपों की प्राप्ति हेतु अग्रसर हो। यह उच्चतर अभिलाषा अधिक संतोष तथा आनन्द प्रदायक है। इस प्रकार विकासशील व्यक्ति निम्नतर प्रवृत्तियों को छोड़ता जाएगा, क्योंकि उनसे कम सन्तोष मिलता है। योग तो यह पहले ही कह चुका है। आधुनिक मनोविज्ञान इस तथ्य से अधिकाधिक सहमति प्रकट करता जा रहा है।

ध्यान का महत्त्व

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की ध्यान के प्रति आस्था बढ़ती जा रही है और इस दिशा में उन्होंने शोध करने शुरू कर दिये हैं। इसके आशय और उपयोग से सम्बन्धित कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्होंने न केवल वैज्ञानिक परीक्षण किए हैं, बल्कि ध्यान सम्बन्धी पुरातन ग्रन्थों का अध्ययन भी शुरू कर दिया है। वे स्वयं भी ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं और ऐसे अनुभव प्राप्त कर रहे हैं जो उन्हें सामान्य बौद्धिक ज्ञान से परे ले जाते हैं। ध्यान द्वारा प्राप्त अनुभवों के आधार पर इन मनोवैज्ञानिकों ने अब सामान्य मानव अस्तित्व की अपनी परिभाषा का पुन:

अवलोकन आरम्भ कर दिया है। उन्होंने घोषित किया कि अधिकतर मनुष्यों को वर्ग-व्यवस्था की दासता के कारण जन्म से ही अपने को कुण्ठित करके रखना पड़ता है। उन्हें व्यक्तियों और वस्तुओं का परिचय अच्छा-बुरा, काला-सफेद, हिन्दू-मुसलमान, चतुर-मूर्ख आदि कहकर दिया जाता है। हम या तो प्रेम करते हैं अथवा घृणा। हम शब्दों द्वारा निर्मित इस विभाजन में इतने लिप्त हो जाते हैं कि संसार को यथार्थ रूप में नहीं देख पाते हैं। अत: हम पूर्वनिश्चित धारणा के अनुसार एक स्वचालित मशीन की तरह चलते रहते हैं। मनोविज्ञान का एक उद्देश्य है, इस यंत्रवत् स्थिति से हमें उबारना।

आधुनिक विचारक एवं मनोवैज्ञानिक आज के असंयत और प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण जीवन का घातक प्रभाव देखकर चिन्तित हैं। मानसिक समस्यायें महामारी की तरह फैल रही हैं। वर्तमान स्थिति झेलने के लिए फौलादी मस्तिष्क की आवश्यकता है। यह भी जरूरी है कि मनुष्य स्वयं अपना मनोविश्लेषक हो। इसके लिए एक ही उपाय है, ध्यान। यह अत्यधिक चिन्ता, द्वन्द्व और तनाव को दूर करने का एक सर्वमान्य उपाय है। यह एक सकारात्मक तथा संतुष्ट जीवन का भी निश्चित उपाय है।

अधिकतर लोग अब मानने लगे हैं कि ध्यान न तो निद्रा है, न सम्मोहन। वास्तव में कुछ उच्च कोटि के योगी तो निरन्तर सोते-जागते ध्यान की अवस्था में ही रहते हैं, यह इस तथ्य को दर्शाता है कि ध्यान नींद और सम्मोहन के परे है। अधिकतर मनोवैज्ञानिक, लोगों को ध्यान करने का सुझाव दे रहे हैं ताकि वे अपनी आन्तरिक क्रियाओं को देख सकें। इस प्रकार वे विभिन्न अंगों तथा मस्तिष्क की अति क्रियाशीलता के प्रति सजग बन सकते हैं और अत्यधिक उद्दीपन अथवा त्रुटिपूर्ण क्रिया में सुधार लाने के लिए कदम उठाए जा सकते हैं। व्याधि दूर करने का यह सर्वोत्तम तरीका है, बीमारी के होने से पहले ही उसकी रोकथाम। नित्य प्रात:काल आधे घण्टे का ध्यान ही ऐसी विश्रान्ति ला देता है कि हमारे बाह्य क्रियाकलाप बेहतर और अधिक सुचारु रूप से होने लगते हैं। अपने दैनिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करने की योग्यता पूर्ण रूप से हमारी आन्तरिक स्थिति पर निर्भर रहती है। यदि हमारी आन्तरिक स्थिति में सामंजस्य नहीं है तो बाह्य वातावरण के साथ भी हमारी पारस्परिक क्रिया सामंजस्यपूर्ण नहीं हो सकती है।

निराशा, उदासी तथा तनाव आदि को अधिकतर लोगों ने जीवन के सामान्य अंग के रूप में स्वीकार कर लिया है, किन्तु ध्यान से इनका निवारण होना अवश्यम्भावी है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रगतिशील चिन्तक भी अब इसमें विश्वास करने लगे हैं। योग की ही भाँति अब वे भी मानने लगे हैं कि मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति आनन्द की है। प्रत्येक व्यक्ति ध्यान का उपयोग अपनी मनोस्थिति के नियंत्रण तथा नकारात्मक स्थितियों के अन्धकार को दूर कर, स्वस्थ आनन्दित मनोभाव लाने के लिए कर सकता है।

मनुष्य की वर्तमान समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या है—परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढाल पाने में असक्षम होना। यह समस्या सौ वर्ष पूर्व नहीं थी। यहाँ तक कि आज भी उन देशों में नहीं है जहाँ प्रौद्योगिक समाज का विकास नहीं हुआ है, क्योंकि वहाँ दिन-ब-दिन क्या वर्ष-दर-वर्ष कोई परिवर्तन नहीं होता था, जबकि प्रौद्योगिक समाज निरन्तर परिवर्तनशील हैं। प्रौद्योगिक समाज में परिवर्तन की गति इतनी तीव्र होती है कि मस्तिष्क उसका सरलता से अनुकरण नहीं कर पाता है। फलस्वरूप परिवर्तनों को न झेल सकने वाले मनुष्य अपने व्यक्तित्व तथा प्रकृति के अनुसार छोटे या बड़े स्तर पर मानसिक असंतुलन का सामना करते हैं। मनोविज्ञान ने इस समस्या को पहचाना है और इस परिवर्तन का सामना करने की क्षमता पैदा करने के लिए ध्यान को एक निश्चित मार्ग माना है।

मनोविज्ञान ने अचेतन मन की आन्तरिक क्रियाओं का विस्तृत ज्ञान सदा आवश्यक माना है, ताकि अचेतन में जड़ जमाए बैठी हमारी कुण्ठाएँ, भय तथा भ्रान्तियाँ, जो जीवन पर आधिपत्य जमाकर समस्या खड़ी कर देती हैं, उनको जाना जा सके तथा उन्हें प्रकट कर उनका क्षय किया जा सके। इस कार्य के लिए योग तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त विधि ध्यान ही है। साथ ही उच्चतर अचेतन मन का अन्वेषण भी आवश्यक है, जहाँ हमारी क्षमताएँ, प्रतिभाएँ तथा आन्तरिक संभावनाएँ छिपी हैं। हममें से कई लोगों में स्वाभाविक रूप से कुछ कलाएँ, क्षमताएँ तथा हुनर होते हैं, जिन्हें हम जानते नहीं हैं और इसलिए कभी उनका उपयोग नहीं करते। हम सदा निराश तथा परेशान रहते हैं। यदि इस प्रतिभा को हम अभिव्यक्त कर सकें तो

रचनात्मक और प्रसन्नचित्त जीवन जी सकते हैं। ध्यान ही इसका उपाय है। इस प्रकार हम अपने आन्तरिक अस्तित्व को खोजकर उसकी सहज तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। हम जिस कार्य में सर्वश्रेष्ठ हैं, उसे करना प्रारम्भ कर सकते हैं।

बायोफीडबैक–योग की एक आधुनिक धारा

ध्यान के क्षेत्र में बायोफीडबैक तकनीकों का भी उपयोग हो रहा है। इसमें मस्तिष्क से निकलने वाली विद्युत धारा को नापना और निरीक्षण करना होता है। सर्वप्रथम हमें इन मानस-तरंगों की उत्पत्ति के कारण और इनकी प्रकृति को समझना होगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में बन्दरों के मस्तिष्क पर शोध करते समय मानस तरंगों का पता चला था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यह शोधकार्य मानव मस्तिष्क पर भी किया गया और तरंगों की आवृत्ति, उनके वोल्टेज एवं आयाम में स्पष्ट विविधता दिखाई पड़ी। इस दिशा में निरन्तर शोध हो रहे हैं तथा पैथोलॉजी के क्षेत्र में मस्तिष्कीय तरंगों के पैटर्न का प्रयोग मस्तिष्क में विद्यमान रोगों, जैसे, ट्यूमर एवं सामान्य मानसिक गड़बड़ियों आदि का पता लगाने के लिए किया जाने लगा है।

ये मानस तरंगें क्या हैं? चिकित्सा वैज्ञानिक निश्चित रूप से तो कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं, पर संक्षेप में इनके कारण और प्रकृति का विश्लेषण इस प्रकार है। मस्तिष्क करोड़ों कोशाणुओं से बना है, जिन्हें स्नायु-कोशिका कहते हैं। ये कोशाणु अनगिनत जोड़ों के द्वारा एक-दूसरे से जुड़े हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि हर कोशाणु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अन्य सभी कोशाणुओं से जुड़ा है। इन पेचीदा कोशिका परिपथों में स्नायविक संवेग निरंतर प्रवाहित होते रहते हैं। स्नायु संवेगों का संचारण तभी सम्भव है जब स्नायु कोशिका में विद्युत शक्ति एक विशेष मात्रा में विद्यमान रहे। इस पूर्व निर्धारित स्तर में अचानक एक प्रस्फुटन अथवा आवेश उत्पन्न होता है। इसी संवेगात्मक आवेश को मानस-तरंग कहते हैं।

शोधकर्त्ताओं ने पता लगाया है कि मानस तरंगों की आवृत्ति, वोल्टेज एवं आयाम तथा व्यक्ति की स्थिति में एक विशिष्ट सम्बन्ध होता है। सुविधा की दृष्टि से तरंगों को चार प्रकारों में बाँट दिया गया है–बीटा, अल्फा, थीटा और डेल्टा। यह बात ध्यान में रखें कि ये मानस तरंगें मन:स्थिति नहीं, बल्कि अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनसे हम अपने मन की अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि इन तरंगों और मन:स्थिति के बीच के सम्बन्ध के कई आयामों की खोज अभी बाकी है, तथापि अब तक के ज्ञात तत्त्वों के आधार पर एक विवरण प्रस्तुत है–

बीटा तरंगें–ये मुख्यत: जाग्रत अवस्था में मस्तिष्क से विकीर्ण होती हैं। इनका सम्बन्ध बाह्य क्रिया-कलापों तथा बहिर्मुखी प्रवृत्ति से है। विचार, चिन्ता, इन्द्रिय ज्ञान आदि की स्थिति में ये तरंगें उत्सर्जित होती रहती हैं। इनका विस्तार लघु एवं इनकी आवृत्ति तीव्र होती है। इनकी आवृत्ति तेरह चक्र प्रति सैकेण्ड से अधिक होती है।

अल्फा तरंगें–ये तरंगें ध्यान की मन्द अवस्था में स्वत: उठती हैं। इनका सम्बन्ध मस्तिष्क की निश्चिन्त, तनावशून्य एवं शांत स्थिति से है। इनका सम्बन्ध सृजनात्मकता से रहता है, अत: रचनात्मक क्रियाओं के समय ये तरंगें प्रचुरता से उत्सर्जित होती हैं। बौद्धिक मन और इन्द्रियों के चुप बैठने पर ही ये तरंगें उठती हैं। ध्यानावस्था में योगियों का अध्ययन करने से ये तथ्य सामने आये हैं। इनका सम्बन्ध ध्यान के विशेष लक्षण, निष्क्रिय सजगता से है। इनकी आवृत्ति की परिधि आठ से तेरह चक्र प्रति सैकेण्ड है।

थीटा तरंगें–इन तरंगों का उत्सर्जन नींद की अवस्था में बहुतायत होता है। इनका सम्बन्ध अचेतन मन से है। जब अचेतन के गहरे संस्कार चेतन और जाग्रत अवस्था की सतहों पर उभरने लगते हैं, तब ये तरंगें उठती हैं। ये तरंगें गहन ध्यान, तीव्र सृजनात्मकता, आनन्द तथा इन्द्रियातीत अनुभूति की अवस्था में उठती हैं। कई बच्चों में जाग्रत अवस्था में ही इन तरंगों का उत्सर्जन होता है, पर वयस्कों में ऐसा बहुत कम होता है। इनकी आवृत्ति-परिधि चार से सात चक्र प्रति सैकेण्ड होती है।

डेल्टा तरंगें–इनका विस्तार गहन है, पर आवृत्ति चार चक्र प्रति सैकेण्ड से भी कम है। इन तरंगों के विषय में कम ही जाना जा सका है, पर इनका सम्बन्ध स्वप्न रहित प्रगाढ़ निद्रा से है। इस अवस्था में ग्रहणशीलता तथा सीखने की क्षमता बढ़ जाती है, अर्थात् दूसरे शब्दों में कहें तो इस अवस्था में रहने वाला व्यक्ति गहरी नींद में टेप रेकार्डर की सहायता से ज्ञानार्जन कर सकता है। ऐसी स्थिति में ज्ञानेन्द्रियों को लाँघते हुए ज्ञान सीधे अचेतन मन में प्रवेश कर जाता है।

इस वर्गीकरण को प्राकृतिक विभाजन नहीं माना जाना चाहिए। सिद्ध योगी या मानसिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखने वाला व्यक्ति एक से दूसरी स्थिति में इच्छानुसार आ-जा सकता है। वह अपनी संकल्पशक्ति का उपयोग कर 'सामान्य' जाग्रत अवस्था में भी बीटा परिधि को पार कर अल्फा तरंगों का उत्सर्जन कर सकता है। प्रारम्भ में बीटा तरंगें विद्यमान होती हैं, अंतत: बीटा तरंगें शान्त हो जाती हैं और कुछ समय पश्चात् थीटा तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं। अगर नींद नहीं आई तो गहरा ध्यान लग जाएगा, जो थीटा तरंगों की प्रधानता बढ़ने के साथ क्रमश: और गहरा होता जाएगा। इस तरह अन्त में वह डेल्टा तरंगों का भी उत्सर्जन कर सकता है, जिसका सम्बन्ध गहरी निद्रा से है। ऐसा अनुमान है कि ध्यान तथा संभवत: समाधि की अवस्था में भी डेल्टा तरंगों का प्राधान्य होता है।

इन तरंगों के स्वरूप को इलेक्ट्रो-इनसेफलोग्राफ नामक विद्युत उपकरण द्वारा देखा जा सकता है। तरंगों के आकार से व्यक्ति की मानसिक स्थिति ज्ञात होती है। इस प्रकार के यंत्रों का उपयोग अभी पैथोलॉजी में तथा अनुसंधान के लिए ही होता है। अभी ये जन-साधारण के उपयोग में आए, इसका प्रश्न ही नहीं उठता है, पर अनेक यंत्र निर्माता इस दिशा में सक्रिय हैं कि कम मूल्य का ऐसा उपकरण तैयार हो, जो लोगों को आसानी से उपलब्ध हो सके। सबसे प्रचलित और सरल यन्त्र है 'हेड फोन', जिससे मानस-तरंगों की क्रियाओं से सम्बन्धित ध्वनि सुनाई पड़ती है। इस दिशा में अभी और प्रगति होने की आशा है।

अब जानना यह है कि बायोफीडबैक किस प्रकार ध्यान में सहायक होगा। अपने अन्दर उठने वाली मानस तरंगों की जानकारी रहने पर व्यक्ति उन्हें अपने इच्छानुसार बदल सकता है। इस तरह गहन अभ्यास से मन:स्थिति भी बदल सकती है। यह तो सम्भव नहीं दिखता कि कोई बायोफीडबैक यन्त्र उठाए और अपनी मन:स्थिति बदल ले, लेकिन अभ्यास से ध्यान की अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

सचेतन रहकर किस तरह मानस तरंगों को बदला जा सकता है? शुरू में यह असंभव प्रतीत होता है, क्योंकि तरंग स्वयं एक मानसिक क्रिया है। इसमें वही अभ्यास और धीरज चाहिए, जिसकी आवश्यकता जीवन के प्रत्येक कार्य में होती है। सतत् प्रयास द्वारा ही हम चलना, बोलना, पढ़ना सीखते हैं। आधुनिक शोधों ने सिद्ध किया है कि शरीर की सभी क्रियाओं, जैसे हृदय गति, श्वसन प्रक्रिया आदि पर नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। युगों से योगी यही करते आ रहे हैं, फिर भी विज्ञान ने अब जाकर इसे गंभीरता से लेना शुरू किया है।

वैज्ञानिक परीक्षणों में विशेष अंगों से होने वाले उत्सर्जन को नापा गया और पाया गया कि हृदय तथा दूसरे अंगों की क्रियाशीलता को मात्र संकल्प-शक्ति से कम अथवा अधिक किया जा सकता है। केवल अभ्यास की आवश्यकता है। इसी प्रकार मस्तिष्क तरंगों को भी नियंत्रित किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने

अनुरूप पद्धति का चुनाव स्वयं करना होगा। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति के लिए मस्तिष्क तरंगों को बीटा से अधिक विश्रान्त अल्फा तरंगों में परिवर्तित करना बहुत कठिन हो सकता है। अधिक प्रयास करने से और अधिक तनाव उत्पन्न हो सकता है या संभव है कि बीटा तरंगों की और अधिक प्रधानता हो जाए। कुछ लोगों के लिए यह इतना आसान है कि केवल परिवर्तन के लिए सोचने मात्र से परिवर्तन हो जाता है, परन्तु इन क्रियाओं में व्यक्तिगत भिन्नताएँ रहेंगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुरूप तरीका चुनना चाहिए।

बायोफीडबैक यंत्र के बिना भी निश्चित रूप से उच्च ध्यान की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है, जैसा कि इतिहास में योगियों ने किया है। महान् योगियों को बायोफीडबैक यन्त्र की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि उनकी संवेदनशीलता इतनी अधिक होती है कि वे अपनी इच्छा से अपने मन की स्थिति को परिवर्तित कर सकते हैं। तथापि, बायोफीडबैक तकनीक प्रारम्भिक अभ्यासियों तथा जो लोग निरन्तर अभ्यास के पश्चात् भी ध्यान में कुछ खास प्रगति नहीं कर पाते, उनके लिए कारगर सिद्ध हो सकती है। प्राय: हमलोग इतने असंवेदनशील होते हैं कि हममें यह जानने की क्षमता भी नहीं होती कि हम अधिक विश्रान्त हो रहे हैं अथवा अधिक तनावग्रस्त हो रहे हैं, अथवा मन की एक ही स्थिति में स्थित हैं। ऐसी स्थिति में बायोफीडबैक तकनीक सहायक हो सकती है।

यद्यपि बायोफीडबैक तकनीक का ज्ञान अभी अपनी शैशवावस्था में है, पर इसमें भविष्य के लिए अनेक संभावनाएँ दिखायी पड़ रही हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐसे युवक-युवतियाँ जो अगोचर की झाँकी पाने के लिए नशीले पदार्थ लेते थे, अब इस बायोफीडबैक यंत्र का उपयोग करने लगे हैं। अभ्यास द्वारा इससे भी वही लाभ तथा परिणाम प्राप्त होते हैं, पर वे ड्रग्स और नशे की लत के दुष्प्रभावों से बच जाते हैं। यह यंत्र ध्यान को पूर्णता प्रदान करने में बहुत सहायक होगा, जिससे ध्यान के सार्थक अनुभव सभी लोगों के लिए उपलब्ध हो जाएँगे।

ध्यान के अभ्यासों तथा बायोफीडबैक की तकनीकों के संयोजन से विश्व में चेतना तथा मन के स्तर को ऊँचा उठाने में बहुत मदद मिलेगी। मन की शुद्धि योग का सामान्य उद्देश्य है, और यही ध्यान का विशेष उद्देश्य भी है। वर्तमान भ्रान्तियों, भयों और कुण्ठाओं को तोड़कर एक शुद्ध मानसिक अवस्था की स्थापना करनी है। तब ध्यान एक सहज प्रक्रिया बन जाती है।

इस प्रकार विज्ञान और आत्मा को एक-दूसरे से दूर रखने वाली बाधायें तेजी से टूट रही हैं। उनके बीच द्विभाजन समाप्तप्राय है। विज्ञान लोगों को आध्यात्मिक पथ पर चलने में सहयोग देने की सम्भावना व्यक्त कर रहा है और ध्यान की विधियाँ मानव मन को सुव्यवस्थित ढंग से समझ कर सृष्टि के प्रति गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने में विज्ञान की सहायक बन रही हैं।

अहं की शल्य-क्रिया

मेरे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी प्रेम और करुणा की मूर्ति थे। लेकिन वे जितने स्नेहशील थे, कर्त्तव्य के प्रति कठोर भी उतने ही थे। एक बार की बात है, एक बूढ़ा यात्री कहीं से घूमता-भटकता आश्रम आ गया। भोजन के बाद थाली धोने को हुआ, तो मैं बोल उठा, 'रहने दो बाबा, रामधनी साफ कर लेगा।' भोजनालय की व्यवस्था मेरे जिम्मे थी और रामधनी भोजनालय में ही सेवक के रूप में नियुक्त था। सामान्यत: रामधनी को मेरे आदेश का पालन करना था, पर उस यात्री की जूठी थाली साफ करने का प्रस्ताव सुनते ही वह अचानक बरस पड़ा, 'मैं जिस-तिस की जूठी थाली नहीं माँजूगा। साफ कर दीजिए मेरा हिसाब, घर चला जाऊँगा।'

उसके बर्ताव से मेरे अहम् को ठेस लगी। मैंने उसका हिसाब साफ कर दिया और आश्रम का दरवाजा दिखाकर कहा, 'अभी निकल जाओ यहाँ से।' जाने के पहले रामधनी शायद स्वामीजी से विदा लेने गया होगा, उन्होंने सारा प्रसंग सुना और कहा, 'ठीक है, सत्यम् ने तुम्हें निकाला है, मैंने तो नहीं निकाला है। आश्रम से तुम्हें जाने की जरूरत नहीं, वह चाहें तो जा सकते हैं। तुम अभी से मेरे सेवक हो, तुम्हें मेरे साथ रहना है।'

मैंने सुना तो सिर पीट लिया। कैसा भयंकर अपमान था मेरा!

दूसरे दिन प्रात:काल स्वामीजी के रातभर लिखे गये तमाम कागजों को समेट कर, उनका कमरा साफ करने के बाद, नियमित रूप से टाईप करने बैठा। कुछ एक पृष्ठों के बाद ही अचानक हाथ रुक गया। स्वामीजी ने एक पूरी कविता ही लिख डाली थी, 'ओ संन्यासी, अहंकार का त्याग कर ..., त्याग कर ...।' और मेरी आँखें कृतज्ञता से भर आईं। फिर तो मैं उनके आगे करबद्ध जा खड़ा हुआ और बोला, 'मुझसे भूल हुई, मुझे क्षमा कर दीजिए। रामधनी जहाँ भी चाहे रहे, मैं उसके साथ रहकर काम कर सकता हूँ।'

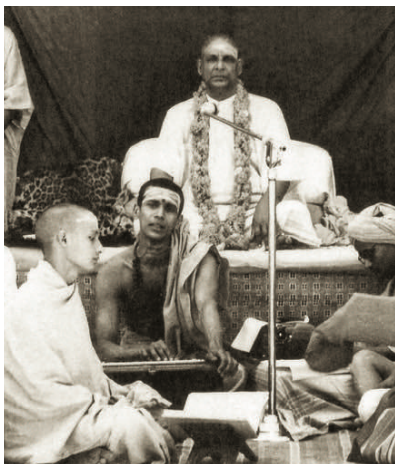

दरअसल स्वामी शिवानन्द जी अहंकार को संन्यासी का सबसे प्रबल शत्रु मानते थे, और अपने शिष्यों को बचा ले चलने के क्रम में जरूरत पड़ने पर एक शल्य-चिकित्सक की तरह कठोरता की सीमा छू लेते थे। सोचता हूँ, कितनी करुणापूर्ण थी वह कठोरता।

हठयोग और तंत्र का सम्बन्ध

योग और तंत्र में परस्पर क्या सम्बन्ध है? योग विलयन तथा विखंडन की प्रक्रिया है। इसलिए दोनों का तात्पर्य एक ही है। ये दोनों भिन्न दर्शन नहीं हैं, एक ही जीवन-शैली के लिये प्रयुक्त दो नाम हैं। यदि योग व्यावहारिक पक्ष है तो तंत्र उसका दार्शनिक पक्ष है। तंत्र जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, योग उनका अभ्यास कराता है।

इसलिए योग और तंत्र को एक ही विज्ञान माना जाना चाहिए। तंत्र को माता माना जाता है और योग को पुत्र। आप योग पर जितने भी ग्रन्थ पढ़ते हैं, वे सबके सब तंत्र पर आधारित हैं। उनका उद्‌गम किसी अन्य दर्शन अथवा विचारधारा से नहीं हुआ। संसार में योग की जितनी भी पद्धतियों का अभ्यास किया जाता है उनका मूल तंत्रशास्त्र में है।

पूर्व और पश्चिम के कुछ महान् दार्शनिकों का मत है कि योग का प्रादुर्भाव सांख्यदर्शन से हुआ है। सांख्य षड्‌दर्शनों में से एक है। परन्तु यह मत सही नहीं लगता, क्योंकि सांख्य दर्शन के किसी भी अध्याय अथवा सूत्र में आसन, प्राणायाम, हठयोग, कुण्डलिनीयोग, मंत्रयोग, राजयोग अथवा लययोग का उल्लेख नहीं मिलता।

हठयोग तंत्र का ही एक अंग है। हठयोग का अभ्यास तंत्र की उच्चतर साधना की पूर्व तैयारी के रूप में किया जाता है। पहले भौतिक शरीर और फिर उसके बाद प्राणिक शरीर की शुद्धि जरूरी होती है। पहले तो आपको उड्‌डियान बंध, वज्रोली तथा भ्रूमध्य पर एकाग्रता का अभ्यास करने में सक्षम होना है। तभी आप वाम मार्ग तथा तंत्र की अन्य शाखाओं के अभ्यास हेतु तैयार हो सकेंगे। जब आप हठयोग का अभ्यास करते हैं तो यह न भूलिए कि हठयोग तंत्र से अलग नहीं है।

अनेक लोग सोचते हैं कि हठयोग केवल आसनों को कहते हैं, परन्तु यदि आप हठ शब्द पर विचार करें तो उसका अर्थ एकदम स्पष्ट हो जायेगा। 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्र होता है। भौतिक शरीर में दो प्रकार की ऊर्जाएँ होती हैं। सौर या पिंगला ऊर्जा प्राण और प्रकाश कहलाती है। चन्द्र या इड़ा ऊर्जा को मन और चेतना कहते हैं। कुण्डलिनी जागरण के लिए इन दोनों ऊर्जाओं का संयोग आवश्यक है और इसी प्रक्रिया को हठयोग कहते हैं।

तंत्र में शिव और शक्ति के संयोग की चर्चा की जाती है। शिव चेतना है तथा शक्ति ब्रह्माण्डीय प्रकृति। शिव तथा शक्ति देश और काल के भी परिचायक हैं। इन दोनों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया तंत्र का आधार है। ब्रह्माण्ड में देश धनात्मक

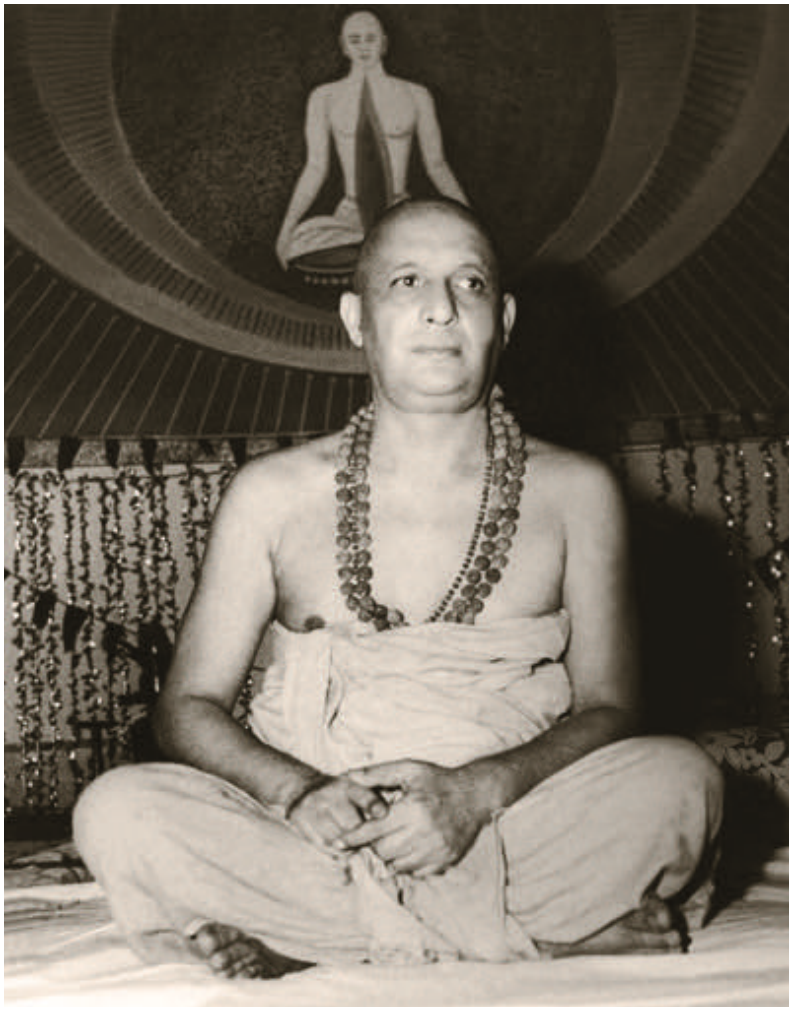

ध्रुव तथा काल ऋणात्मक ध्रुव है। जब ये दोनों पृथक् रहते हैं तो कोई विस्फोट नहीं होता तथा चिनगारी नहीं निकलती है। परन्तु जब दोनों जुड़ते हैं तो चिनगारी उत्पन्न होती है। इसी प्रकार जब तक शिव और शक्ति एक-दूसरे से दूर रहते हैं, देश तथा काल पृथक् रहते हैं तो सृजन नहीं हो सकता। इनका संयोग होने पर ही विस्फोट होता है।

यह विस्फोट पदार्थ के नाभिक में होता है। हर पदार्थ का नाभिक होता है। जैसे ही पदार्थ में विस्फोट होता है, नाभिक का निर्माण होता है। हठयोग का यही विज्ञान है। इड़ा और पिंगला आज्ञा चक्र में मिलती हैं। आज्ञा चक्र मेरुदण्ड के ऊपरी

छोर पर भ्रूमध्य के पीछे स्थित है। इड़ा और पिंगला के संयोग के परिणामस्वरूप आत्मसाक्षात्कार होता है। हठयोग का यही तात्पर्य है। योग शब्द की व्युत्पत्ति 'युज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ संयोग अथवा मिलन है। 'हठ' शब्द का तात्पर्य सूर्य और चन्द्र, इड़ा और पिंगला, प्राण तथा मन, शिव एवं शक्ति तथा धनात्मक और ऋणात्मक ऊर्जा से होता है।

इन दो शक्तियों के विस्तार तथा मुक्ति की प्रक्रिया को तंत्र कहते हैं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में अणु का विखण्डन करता है तो उससे ऊर्जा मुक्त होती है, इसी तरह मन से भी ऊर्जा मुक्त की जाती है। इसे तंत्र कहते हैं। यह कोई रहस्य नहीं है, बल्कि एक अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया है। आज वैज्ञानिक प्रयोगशाला में बैठकर पदार्थ का विखण्डन तथा विश्लेषण तो करते हैं, परन्तु मन का विखण्डन तथा विश्लेषण नहीं करते। यहाँ यह समझना बहुत आवश्यक है कि मन भी पदार्थ है। मन पदार्थ तो है, परन्तु अन्य पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म है। हमारा मन वर्तमान तथा पूर्व जन्मों के लाखों संस्कारों से मिलकर बना है।

जिस प्रकार वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में पदार्थ का विखण्डन तथा विश्लेषण करता है, तांत्रिक की प्रयोगशाला उसका अपना मन होता है, जहाँ वह मन में संचित प्रत्येक कर्म तथा संस्कार का विश्लेषण करता है। इस प्रकार वैज्ञानिक की तरह तांत्रिक भी मन का विखण्डन तथा विश्लेषण करता है। जब आप पदार्थ को तोड़ते हैं तो आपको नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त होती है और जब आप मन का विखण्डन करते हैं तो आत्मसाक्षात्कार होता है।

हठयोग का अभ्यास तंत्र की उच्चतर साधना की तैयारी है। ऐसे अनेक दिग्भ्रमित लोग आज भी विद्यमान हैं जो आसनों को नट के करतब, प्राणायाम को ऑक्सीजन और कार्बन का नियंत्रण तथा मंत्र-साधना को धार्मिक कर्मकाण्ड कहने में संकोच नहीं करते, क्योंकि उन्हें इस विज्ञान की समुचित जानकारी नहीं है।

मानव प्रयोगशाला में आत्मसाक्षात्कार हेतु आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध आवश्यक प्रक्रियाएँ है। मान लीजिये, एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में बैठा है, परन्तु वहाँ विद्युत आपूर्ति नहीं है, तो वह क्या कर सकता है? यदि वहाँ वातानुकूलन उत्पन्न करने के साधन नहीं हैं तब भी वह कुछ नहीं कर पायेगा। इसी तरह आप भी अपनी मन रूपी प्रयोगशाला में बैठे हैं तथा शरीर के संदर्भ में मन के व्यवहारों तथा उसकी प्रतिक्रियाओं को नोट कर रहे हैं। अब यदि आपका पेट गड़बड़ है, रक्तचाप अनियंत्रित है, स्नायु संस्थान तनावग्रस्त है तथा रक्त विषाक्त तत्त्वों से भरा है, तो क्या आप अपने प्रयोग में सफल हो पायेंगे? निश्चय ही आप गलत निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। इसलिये याद रखिये कि हठयोग तथा तंत्र अन्योन्याश्रित विषय हैं।

त्वमेव सर्वं मम देव देव

दिनेश खरे, दुर्ग

अतीत की हमारी स्मृतियाँ उस समय जीवन्त हो उठीं जब ब्रह्मलीन परमपूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी की तपोभूमि रिखिया में शतचण्डी महायज्ञ के पावन पर्व पर हम संतद्वय, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती और स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती के श्रीमुख से अपने सद्गुरु के गुणगान सुन रहे थे।

स्थान वही तपोभूमि का था, बैठने का आसन वही था, बस समय परिवर्तित हो गया था। वर्षों पूर्व जिस कल्पतरु की छाँव में श्री स्वामीजी की गद्दी हुआ करती थी, आज उसी पेड़ की सघन छाया तले विराजित इन संतद्वय को सहसा देखकर ऐसा लगा मानो श्री स्वामीजी की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। जब श्री स्वामीजी सशरीर थे तब वे जिस अंदाज से प्रेम के साथ सभी आगन्तुकों-अनुयायियों से मिलकर अपनापन प्रदर्शित करते थे आज भी वही दृश्य दिखाई दिया। आज संतद्वय भी उसी तौर-तरीके से मधुर-मधुर मुस्कान के साथ देश-विदेश के विभिन्न प्रान्तों से आये शिष्यों, संन्यासियों और श्रद्धालुओं के साथ मिलजुल कर श्री स्वामीजी की साक्षात् उपस्थिति का परिचय दे रहे थे।

एक दृश्य में हमारे प्रिय स्वामी निरंजनानन्द जी उन नवयुवकों के साथ बाल विनोद करते दिखे जो 10-11 साल की छोटी उम्र से ही श्री स्वामीजी की ओर आकृष्ट हुए थे और उनके दर्शनार्थ तब से रिखिया आते थे। आज उन्ही बटुकों को मुस्कुराने की कला सिखाते हुए उन्हें उनके बचपन के दिनों की याद दिलाते हुए पूछा कि तुम्हें याद है न अपने बचपन की बात ... जब तुम लोग छोटे-छोटे से थे तब से श्री स्वामीजी से मिलने सुदूर प्रान्त से आया करते थे।

आज हम यह कहने में गौरवान्वित होते हैं कि केवल श्री स्वामीजी की कृपादृष्टि के फलस्वरूप इन बच्चों में सुसंस्कारों का बीजारोपण बचपन में हुआ था जो कालान्तर में पल्लवित हुआ। एक सच्चे संत की शिक्षाओं और संस्कारों को इन बच्चों ने छोटी उम्र से ही ग्रहण करना सीखा है।

श्री स्वामीजी की अवधारणा थी कि बच्चों को शुरुआत में ही अच्छे संस्कार और अच्छी शिक्षा प्राप्त होनी चाहिये, जिससे उनका आत्मज्ञान जागृत हो और वे स्वतंत्र तथा आत्मनिर्भर बन सकें, उनमें समाज तथा देश के प्रति जिम्मेदारी का भार सहने की शक्ति बचपन से ही आ जाए, इसीलिये दस-बारह वर्ष की कम उम्र के पहले ही बच्चों को अच्छे संस्कार दिये जाने चाहिये।

आज अपने गुरुजी को याद करते ही उत्तराधिकारी शिष्य, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी का दिल भर आया होगा। उनकी करुणामयी आवाज से हृदय के उद्‌गार व्यक्त हो रहे थे, उन्होंने अपने गुरुजी के बारे में सच्ची बातें बताईं। उन्होंने कहा, 'आज, अपने गुरुजी के शिष्य होने के नाते मैं उनकी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, उनका गुणगान नहीं गा रहा हूँ, बल्कि सत्य वचन कह रहा हूँ कि जब भी हम गुरुजी को याद करते हैं, उनकी ओर देखते हैं तो हमें उनका साक्षात् स्वरूप दिखाई देता है, प्रेम की प्रतिमूर्ति को हम देखते हैं, एक ऊर्जा की, आनन्द की अनुभूति हमें होती है। हमने कभी भी भगवान को नहीं देखा, किसी अवतारी पुरुष या ऋषि-मुनि को नहीं देखा, लेकिन हमें हमारे गुरुजी में वे सब गुण दिखाई देते हैं जो भगवान के होते हैं, एक अवतारी महापुरुष के होते हैं, ऋषि-मुनियों के होते हैं। हमारे लिये तो हमारे गुरुजी सब कुछ थे—भगवान, अवतारी महापुरुष, सिद्ध संत, ऋषि-मुनि और आज भी हमें अनुभव होता है कि वे हमारे सब कुछ हैं, सब कुछ थे और आगे भी सब कुछ रहेंगे।' फिर उन्होंने सत्संग सुन रहे अनुयायियों की ओर इशारा कर पूछा, 'हमारे लिये श्री स्वामीजी सब कुछ थे। बताओ तुम्हारे लिये श्री स्वामीजी कौन थे? कैसे थे?'

पूरे वातावरण में एकदम शान्ति छा गई। सुखों को साथ लिये शीतल-मन्द सुगन्धित हवा बहने का आभास हो रहा था। हमारी अश्रुपूरित आँखें कुछ भी बयाँ करने में असमर्थ थीं। वाणी भी मौन थी। तत्क्षण श्रद्धेय स्वामी निरंजनानन्द जी के हृदय से अपने सद्‌गुरु के स्मरण में निकले उद्‌गार को सुन हमारा मन शान्त हुआ—

तुमसे हमने दिल को लगाया, जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझको अपना पाया, जो कुछ है सो तू ही है।।

हे ईश्वर! हमें ऐसी सद्‌बुद्धि दें कि मन में सद्‌गुरु की स्मृति सदैव बनी रहे।

आश्रम में व्याधियों से संघर्ष

आश्रम जीवन उन लोगों के लिए बड़ा लाभदायक है जो किसी शारीरिक अथवा मानसिक व्याधि से ग्रस्त होते हैं। यह जरूरी नहीं कि सभी लोग अपनी बीमारियों का शारीरिक उपचार करें। मानव स्वभाव मुख्यत: चार प्रकार का होता है। कुछ लोग सक्रिय होते हैं, तो कुछ भावुक। कुछ अन्तर्मुखी होते हैं, तो अन्य बौद्धिक। आश्रम के कार्यों में सभी लोग अपनी मानसिक रुझान के अनुसार कार्य करते हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को एक महत्त्वपूर्ण बात सदैव याद रखनी होती है—आश्रम में रहते हुए बीमारियों के प्रति उनका दृष्टिकोण वैसा नहीं होना चाहिए जैसा घर में होता है।

बीमारी का सम्बन्ध शरीर से होता है, पर प्राय: यह मन को प्रभावित करती है, और मन उदास रहने लगता है। घर-परिवार में प्राय: यही होता है, लेकिन आश्रम में रहते हुए आपको शरीर से मन को पृथक् करना पड़ता है और इसके लिये आत्मबल आवश्यक है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि बीमारी शरीर को प्रभावित करती है, परन्तु मन को उससे प्रभावित नहीं होना चाहिए। इसलिए आश्रम में जो लोग बीमार पड़ते हैं उन्हें एक भिन्न मनोवृत्ति विकसित करनी चाहिए।

मैं पिछले चालीस वर्षों से आश्रम-जीवन बिता रहा हूँ। चूँकि मैं शिष्य और गुरु दोनों रहा हूँ, मैं शिष्यों की शारीरिक तथा मानसिक प्रतिक्रियाओं से अच्छी तरह परिचित हूँ। जब मैं अपने गुरु-आश्रम में शिष्य की तरह रहता था तो एक बार टायफाइड से ग्रस्त हो गया। पर उस समय मुझे यह भी नहीं मालूम था कि मुझे क्या बीमारी थी। कोई मुझे सलाह देने वाला भी नहीं था। मुझे अपनी देखभाल खुद करनी पड़ी। न तो मुझे उबला पानी मिलता था, न ही डॉक्टरी सहायता सुलभ थी, फिर भी मैं ठीक हो गया, क्योंकि मैं सोचता था बीमारी तो शरीर को है। यदि वह उसमें रहती है तो रहे, मैं अपने मन को उससे क्यों प्रभावित होने दूँ। मैं उसे शुभचिन्तन में लगाए रहूँगा। मैं अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने लगा। कुछ समय बाद मुझे बीमारी से मुक्ति मिल गई।

एक समय की बात है, मैं आश्रम से ऋषिकेश जा रहा था। रास्ते में मुझे एक वृद्ध संन्यासी ने देखा और रोककर कहा, 'अरे! सुनो, तुम्हें तो पीलिया हो गया है।' मैं यह भी नहीं जानता था कि पीलिया क्या होता है। जब मैं आश्रम में वापस आया तो मैंने उस संन्यासी की बात स्वामीजी को बतायी। मेरे गुरुदेव स्वयं डॉक्टर थे। वे बोले, 'हाँ, तुम्हें पीलिया है।' मैंने उनसे पूछा, 'तब मैं क्या करूँ?' वे बोले, 'कुछ नहीं।'

अब आप समझ गये होंगे कि आश्रम में रहने वालों को किस तरह अपने शरीर और मन को व्यवस्थित रखना होता है। शरीर की बीमारी एक अलग स्थिति है, परन्तु जब वह मन को प्रभावित करती है, तब वह गंभीर रूप धारण कर लेती है। उस पर भी यदि आप लापरवाह रहें तो भावनाएँ भी उसकी चपेट में आ जाती हैं। एक बार

यदि बीमारी का प्रभाव मन और भावनाओं को जकड़ ले, तो ईश्वर ही ऐसे व्यक्ति की मदद कर सकता है। इसलिए जब भी कोई आश्रमवासी बीमार पड़ता है, मैं उसे शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से पर्याप्त विश्राम करने के लिए कहता हूँ।

सच तो यह है कि जब रोग से शरीर तथा मन प्रभावित होते हैं तो मुक्ति का रास्ता दिखलाई नहीं पड़ता, लेकिन जैसे ही मन को शरीर से अलग करते हैं, बीमारी जादू की तरह गायब हो जाती है। यही बात आध्यात्मिक शक्ति द्वारा आरोग्य प्रदान करने की प्रक्रिया में भी घटित होती है। यहाँ भी शरीर और मन का पृथक्करण होता है। इस स्थिति में उपचार या आरोग्य प्रदान करने का प्रभाव पलक झपकते दिखने लगता है।

मान लीजिये, कोई व्यक्ति कैंसर जैसी घातक व्याधि से पीड़ित है। जब मैं छोटा था, कैंसर की बीमारी के विषय में सुना भी नहीं था। उस समय टी.बी. अत्यन्त मारक व्याधि थी। तीस-चालीस के दशक तक यदि किसी को यह बीमारी होती थी तो लोग यह मानते थे कि मरीज का अन्त निकट है। उस जमाने में लोग कैंसर और उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों से परिचित नहीं थे। ये बीमारियाँ तकनीकी सभ्यता और रासायनिक द्रव्यों से युक्त खाद्य वस्तुओं के प्रचलन के साथ आयीं। यदि आज कोई व्यक्ति कैंसर से पीड़ित है तो यह मानिये कि वह शरीर, मन तथा आत्मा के स्तरों पर बीमारी से ग्रस्त है और बीमारी उसके सूक्ष्म शरीर तक पहुँच चुकी है। कैंसर द्वारा उसका शरीर, मन, भावनाएँ आदि सभी प्रभावित हो चुकी हैं।

डॉक्टर तो मात्र शरीर का इलाज करता है, इसलिए उसका कुछ असर नहीं होता। यदि किसी ऐसी युक्ति का आविष्कार होता जिससे भौतिक शरीर के कैंसर को मन, भावनाओं तथा सूक्ष्म शरीर से पृथक् किया जा सकता तो यह उपचार आश्चर्यजनक रूप से कारगर सिद्ध होता। यही कारण है कि आश्रम में रोगियों को सर्वप्रथम जो काम करना होता है, वह है शरीर से मन को अलग करना।

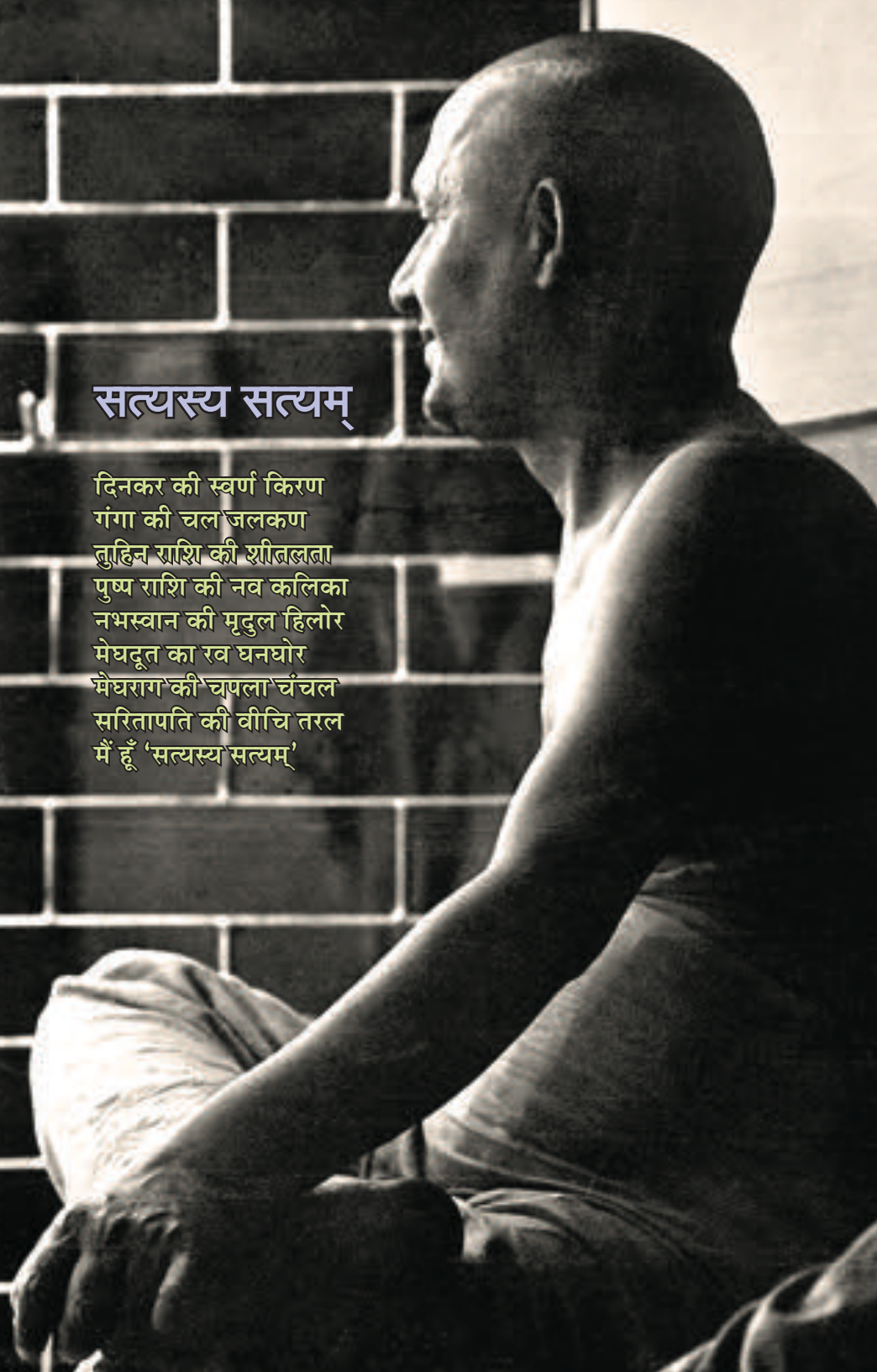

सत्यस्य सत्यम्

दिनकर की स्वर्ण किरण
गंगा की चल जलकण
तुहिन राशि की शीतलता
पुष्प राशि की नव कलिका
नभस्वान की मृदुल हिलोर
मेघदूत का रव घनघोर
मेघराग की चपला चंचल
सरितापति की वीचि तरल
मैं हूँ 'सत्यस्य सत्यम्'

सूर्य नमस्कार–प्राणशक्तिदायिनी विधि

सूर्य नमस्कार एक ऐसी गहन, सशक्त विधि है जिसके अभ्यास से हम पूर्ण समग्रता से उल्लासपूर्ण जीवन जी सकते हैं और अपने क्रियाकलापों को अधिक निपुणता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं। ऐसा लगता है कि इस अभ्यास का विकास दो मुख्य उद्देश्यों से किया गया था–पहला, आत्मज्ञान से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करना तथा दूसरा, आध्यात्मिक जागृति तथा कुण्डलिनी योग के लिये स्वयं को तैयार करना।

सूर्य नमस्कार के नियमित अभ्यास से होने वाले लाभ सामान्य शारीरिक व्यायामों की तुलना में बहुत अधिक हैं। साथ-ही-साथ खेल से मिलने वाले आनन्द तथा शारीरिक मनोरंजन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। इसका कारण है कि इससे शरीर की ऊर्जा पर सीधा सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह सौर ऊर्जा मणिपुर चक्र में केन्द्रित रहती है तथा पिंगला नाड़ी से प्रवाहित होती है। जब यौगिक साधना के साथ सम्मिलित करते हुए अथवा प्राणायाम के साथ सूर्य नमस्कार का अभ्यास किया जाता है, तब शारीरिक तथा मानसिक, दोनों स्तरों पर ऊर्जा संतुलित होती है। इस तथ्य को ठीक से समझने के लिये हमें नाड़ियों के सूक्ष्म क्रियाकलापों का ज्ञान होना चाहिये।

जीवन का दोहरा पक्ष

हम द्विपक्षीय जगत् में रहते हैं, जहाँ रात-दिन, अंधेरा-उजाला, अच्छा-बुरा, अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी, ज्ञान-क्रिया इत्यादि हमेशा रहते हैं। हम दो ध्रुवों की दुनिया में जी रहे हैं। इन्हें योग में इड़ा तथा पिंगला के नाम से जाना जाता है। चीन के ताओ दर्शन में यिन तथा याङ् इस द्वित्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपने ब्रह्माण्ड को इन प्रतीकों से समझा जा सकता है।

योगशास्त्रों के अनुसार एक आधारभूत ऊर्जा-संरचना हमारे शरीर को जीवन प्रदान करती है। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार पूरे मानव शरीर में 72000 नाड़ियाँ या ऊर्जा-प्रवाह पथ हैं। विभिन्न स्तरों पर ये प्रवाह परस्पर संबद्ध हैं तथा एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। ये स्तर शारीरिक, प्राणिक, मानसिक या अतीन्द्रिय हो सकते हैं। ऊर्जा-प्रवाह के इन दोनों पथों के विपरीत गुण होते हैं। समूची प्रकृति में यह द्वित्व दृष्टिगोचर हो रहा है। व्यष्टि और समष्टि–दोनों इस द्वित्व पर आधारित हैं।

आध्यात्मिक शक्ति का जागरण

जब इड़ा और पिंगला का संयोग होता है तो एक तीसरी शक्ति का उदय होता है। यह शक्ति है आध्यात्मिक ऊर्जा जिसका प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होता है। इड़ा तथा

पिंगला में पूर्णतया संतुलन होने पर ही यह जागरण सम्भव है। इस प्रकार निर्मुक्त होने वाली ऊर्जा के द्वारा व्यक्तिगत चेतना देश-काल से परे लोकोत्तर आध्यात्मिक क्षेत्र में पहुँच जाती है, परन्तु इस जागरण के पूर्व लम्बे समय के अभ्यास द्वारा मन तथा शरीर की पूरी तैयारी होना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि प्रवाह समान रूप से तथा पर्याप्त मात्रा में होता रहे।

पिंगला नाड़ी को संतुलित तथा प्राण ऊर्जा को निर्मुक्त करने में सूर्य नमस्कार की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वस्थ शरीर तथा क्रियाशील जीवन ही आध्यात्मिक विकास का आधार है। अतीत के अनेक दर्शनों ने इस आधारभूत तथ्य की उपेक्षा की है। जब तक शारीरिक अवयव संतुलित न हों तथा मानव के समग्र व्यक्तित्व के साथ ये संघटित न हों तब तक आध्यात्मिक जागरण सम्भव नहीं है। क्रमविकास, विशेषत: आध्यात्मिक स्तर के क्रमविकास के लिए संतुलन की आवश्यकता होती है, अन्यथा अंधकार तथा अज्ञान बने ही रहेंगे।

प्राणमय शरीर तथा नाड़ियों पर प्रभाव

यह समझने के लिये कि सूर्य नमस्कार का प्राणमय शरीर तथा नाड़ियों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, हमें यह जानना चाहिये कि प्रत्येक आसन का अलग-अलग क्या प्रभाव होता है। तभी हम सम्पूर्ण अभ्यास को समझ सकते हैं। यहाँ हम आसन के साथ-साथ संबंधित प्राणायाम, चक्रों के प्रति जागरूकता तथा मंत्रों के प्रभावों पर भी विचार कर रहे हैं। आसनों के साथ इन्हें जोड़ देने से पूरे अभ्यास का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है।

प्रणामासन–अन्तर्मुखता, शिथिलीकरण तथा शान्ति की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। अनाहत चक्र की क्रियाशीलता बढ़ती है।

हस्त-उत्तानासन–इसमें शरीर ऊपर की ओर ताना जाता है। पीठ तथा गर्दन की पेशियाँ शिथिल होती हैं और वक्ष तथा उदर में तनाव आता है। इस आसन में गहरी श्वास अन्दर लेते समय उदर की मालिश होती है तथा पाचन सुधरता है। शरीर को ऊपर की ओर खींचने से मेरुदण्ड में भी इसी प्रकार का खिंचाव उत्पन्न होता है, जिससे कशेरुकाओं के बीच पाई जाने वाली स्पंजी डिस्क स्वस्थ बनी रहती है तथा मेरुदण्ड के स्नायुओं को शक्ति मिलती है। भुजायें तथा कंधे तनाव-रहित हो जाते हैं। गोल कंधों की स्थिति सुधर जाती है। इस आसन से मोटापा भी घटता है, क्योंकि यह चुल्लिका ग्रंथि तथा विशुद्धि चक्र पर प्रभाव डालता है और चयापचय की गति में वृद्धि करता है। पूरक के वेग से प्राण का प्रवाह शरीर के ऊपरी भाग की ओर होता है।

पादहस्तासन–इस आसन में आगे की ओर झुकने वाले तथा सिर के बल किये जाने वाले आसनों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। इसमें उदर के अवयवों विशेषतया

यकृत, गुर्दे, पित्ताशय, अग्न्याशय, एड्रिनल ग्रंथि, गर्भाशय तथा अण्डाशय की मालिश हो जाती है। सम्पूर्ण उदर प्रदेश को शक्ति प्राप्त होती है, जिससे कब्ज जैसी अनेक बीमारियों से मुक्ति मिलती है। पाचन शक्ति बढ़ती है तथा महिलाओं के रोग, जैसे, गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना या अनियमित मासिक धर्म दूर होते हैं। मेरुदण्ड के स्नायुओं में खिंचाव उत्पन्न होने के कारण उनमें रक्त संचार बढ़ता है। घुटने के पीछे की नसों तथा पिण्डलियों में भी खिंचाव आता है, जिससे स्फीत शिरा तनावमुक्त होती है तथा हृदय में रक्त वापस आने में सहायता मिलती है। अंतिम स्थिति में मस्तिष्क में रक्त प्रवाह बढ़ता है। आगे झुकने वाले तथा सिर के बल किये जाने वाले आसनों का संयुक्त प्रभाव पड़ने के कारण सम्पूर्ण शरीर को शक्ति प्राप्त होती है, क्योंकि सभी महत्त्वपूर्ण अन्तःस्रावी ग्रंथियों यथा प्रजनन अंग, अधिवृक्क, थाइमस, चुल्लिका, उपचुल्लिका, पीनियल तथा पीयूषिका पर दबाव पड़ता है। सबसे अधिक खिंचाव बस्ति प्रदेश में होता है। स्वाधिष्ठान चक्र भी बहुत अधिक प्रभावित होता है। प्राण रेचक द्वारा शरीर के निचले भागों में प्रवाहित किया जाता है। जब प्राण नीचे की ओर बढ़ता है तो उसे अपान कहते हैं।

अश्व संचालनासन–इस आसन में मेरुदण्ड पीछे की ओर मुड़ता है। इससे पीठ की पेशियाँ शिथिल होती हैं। परिणामस्वरूप उदर की पेशियों में भी खिंचाव आता है। प्रमुख खिंचाव श्रोणि प्रदेश में ही होता है। जब एक पैर आगे रखते हुए दूसरे को यथासम्भव पीछे की ओर ले जाया जाता है तो श्रोणि नीचे तथा आगे की ओर आती है। एकाग्रता भ्रूमध्य, अर्थात् आज्ञा चक्र पर होनी चाहिये, जिसका सीधा संबंध मूलाधार चक्र से है। इस प्रकार श्रोणि प्रदेश में निर्मुक्त हुई ऊर्जा से

आज्ञा चक्र उद्दीप्त होता है। पूरक के साथ प्राण एक नाड़ी के सहारे ऊपर की ओर बढ़ता है। यह नाड़ी जाँघ के अग्र भाग तथा शरीर के अग्र भाग से होती हुई आज्ञा चक्र तक पहुँचती है। यदि आपकी साइनस अवरुद्ध है तो इस आसन का अभ्यास करते समय तुरन्त आराम का अनुभव होता है।

पर्वतासन–इसे सुमेरु आसन भी कहते हैं। इससे भुजाओं तथा पैरों की पेशियाँ और स्नायु सबल बनते हैं; पिंडली की पेशियों में खिंचाव उत्पन्न होता है तथा मेरुदण्ड सीधा व दृढ़ बनता है। इस आसन से स्फीत शिरा को आराम मिलता है तथा मेरुदण्ड के स्नायु सबल बनते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इससे विशुद्धि चक्र में उद्दीपन होता है, क्योंकि ठुड्ढी को सीने से सटाया जाता है जिससे चुल्लिका ग्रंथि पर दबाव पड़ता है। रेचक के साथ-साथ प्राण का प्रवाह नीचे की ओर हो जाता है।

अष्टांग नमस्कार–इस आसन से वक्ष का विकास होता है। बाहु, कंधे तथा पैर सबल बनते हैं। सामान्य मेरुदण्ड की वक्रता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस कारण इस क्षेत्र में रक्त प्रवाह बढ़ जाता है और तब स्नायु सबल होते हैं। इस स्थिति में पीठ की पेशियाँ बहुत अधिक शिथिल हो जाती हैं। मणिपुर चक्र में उद्दीपन होता है। इस स्थिति में जब मेरुदण्ड पर ऊपर से नीचे तक दबाव पड़ता है, तब इस केन्द्र से निर्मुक्त ऊर्जा का अनुभव किया जा सकता है। चूँकि श्वास को बाहर ही रोककर रखा जाता है अत: प्राण मणिपुर चक्र की ओर बढ़ता है, जहाँ पर प्राण तथा अपान का संयोग होता है।

भुजंगासन–इस आसन में वक्ष तथा उदर पर गतिशील दबाव पड़ता है, जिसके कारण दमा, कब्ज, अपच, गुर्दे तथा यकृत की अनेक बीमारियों से मुक्ति मिलती है। पृष्ठ पेशियों यथा मेरुदण्ड के स्नायुओं को तनावरहित बनाने के लिये यह एक सर्वश्रेष्ठ आसन है। जब अभ्यासी इस आसन की स्थिति में आता है, तब ऊपर से नीचे तक प्रत्येक कशेरुका पर खिंचाव पड़ता है। इस स्थिति में मेरुदण्ड सिर की ओर आगे खिंच जाता है। इस कारण मेरुदण्ड के अंतिम छोर पर भी, जहाँ स्वाधिष्ठान चक्र है, सूक्ष्म खिंचाव उत्पन्न होता है। पूरक के कारण इस स्थिति में प्राण का प्रवाह ऊपर की ओर होता है, परन्तु हम अपनी सजगता स्वाधिष्ठान क्षेत्र में बनाये रखते हैं, ताकि ऊर्ध्वगामी प्रवाह के स्रोत पर प्राण को उद्दीप्त कर सकें। प्राण भी सहज ही ऊपर की ओर बढ़ता है क्योंकि पिछली दो स्थितियों में इसे नीचे की ओर रोक कर रखा गया था।

संयुक्त प्रभाव

हमारा स्थूल शरीर पदार्थ तथा ऊर्जा का संयोग है। सूर्य नमस्कार में आगे तथा पीछे की ओर होने वाली शारीरिक गतिविधियाँ हमारे चयापचय की दर को बढ़ाने तथा ऊर्जा को निर्मुक्त करने के लिये पर्याप्त हैं। जब इन्हें चक्रों के उद्दीपन के साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है, तो इसका प्रभाव बढ़ जाता है।

मेरुदण्ड शरीर तथा मस्तिष्क के मध्य एक कड़ी है और हमारी सभी प्रकार की ऊर्जाओं का प्रवाह-पथ है। इड़ा तथा पिंगला नाड़ियाँ इसमें स्थित हैं। अत: इसे स्वस्थ रखना अत्यंत आवश्यक है। एक क्रियाशील तथा गतिशील अभ्यास के रूप में सूर्य नमस्कार पिंगला नाड़ी पर सबसे अधिक प्रभाव डालता है, विशेषत: जब इसे शीघ्रता से किया जाता है। परन्तु यदि मंत्रों एवं चक्रों के प्रति जागरूकता रखते हुए मंद गति से इसका अभ्यास किया जाये तो इड़ा तथा पिंगला दोनों लगभग समान रूप से प्रभावित तो होती हैं, परन्तु यह बहुत कुछ अभ्यासी की योग्यता पर निर्भर करता है।

जब हम सूर्य नमस्कार का अभ्यास मंद गति से करते हैं तब पिंगला नाड़ी को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिया जाता है तथा मानसिक विकास पर अधिक समय दिया जाता है। इस तरीके से आसनों की यह शृंखला मुद्राओं की शृंखला का रूप ले लेती है और तब इससे अधिक संतुलित विकास होता है। यही कारण है कि हम तीव्र तथा मंद, दोनो गतियों से इसका अभ्यास करने की सलाह देते हैं, क्योंकि वर्तमान जीवनशैली के कारण हममें से अधिकतर लोगों के लिये पिंगला नाड़ी में कुछ अधिक उद्दीपन तथा परिष्करण की आवश्यकता होती है। मुद्राओं अथवा ध्यान के माध्यम से आत्मा की गहराइयों में उतरने के पूर्व शरीर को सबल तथा स्वस्थ बनाना आवश्यक होता है। शरीर से अशुद्धियों को बाहर निकालने वाले मार्ग बिल्कुल अवरोधरहित होने चाहिये।

प्राण की गति को बढ़ाकर तथा उसे नियंत्रित करके शरीर में प्राण-प्रवाह के मार्गों को स्वच्छ बनाना सम्भव है। सूर्य नमस्कार के प्रत्येक आसन से प्राणों के ऊपर तथा नीचे की ओर होने वाले स्वाभाविक प्रवाह में सहायता मिलती है, जिससे अवरोध समाप्त हो जाते हैं। अभ्यास की समाप्ति पर प्राणों का प्रभाव सहज हो जाता है तथा शारीरिक क्रियाकलापों में सुधार होता है। यह ऊर्जा का अपव्यय होने के स्थान पर उसे रचनात्मक दिशा प्रदान करता है।

मणिपुर चक्र के उद्दीपन के कारण इस रचनात्मक दिशा (अवरोध समाप्त होने के फलस्वरूप पुनर्दिशान्तरण कहना उचित होगा) का प्रभाव बढ़ जाता है। यद्यपि हम एक आवृत्ति में मणिपुर चक्र पर दो बार से अधिक एकाग्र नहीं हो पाते, फिर भी इस पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। साथ-ही-साथ इससे पिंगला नाड़ी के प्रवाह में भी वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है जिसे शरीर का गुरुत्व केन्द्र कहा जा सकता है। यह सौर-जालक से जुड़ा हुआ है, जो ऐसे स्नायुओं का समूह है जो सूर्य की रश्मियों की भाँति केन्द्र जालक से बाहर की ओर फैल जाते हैं। सौर-जालक अनुकंपी स्नायु मंडल तथा पिंगला नाड़ी से संचालित होता है, जो पाचन व पोषण तत्त्वों के स्वांगीकरण के लिये उत्तरदायी है। सूर्य नमस्कार से शरीर में लोच आती है तथा उस पर तनाव पड़ता है। गुरुत्व-केन्द्र पर खिंचाव तथा संकुचन होने के कारण उसमें अधिकतम उद्दीपन होता है। सूर्य नमस्कार का अभ्यास पाचन शक्ति में सुधार लाने के अतिरिक्त मणिपुर चक्र को स्वस्थ रखते हुए सम्पूर्ण शरीर में जीवनीशक्ति की वृद्धि करता है।

सूर्य नमस्कार का प्रारम्भिक प्रशिक्षण पाने तथा उससे परिचित होने के पश्चात् धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये। पहले हम शारीरिक ढाँचे, पेशियों, नसों में खिंचाव उत्पन्न करते हैं तथा आंतरिक अवयवों को उद्दीप्त करते हैं। एक बार अपनी शारीरिक सीमाओं का ज्ञान हो जाने पर तथा उनसे मुक्ति पाने का प्रयास प्रारम्भ हो जाने के बाद, प्राणों की सजगता की ओर कदम बढ़ाये जा सकते हैं तथा इस स्तर पर विभिन्न अवरोधों को दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। अन्ततः इससे प्राणों के प्रवाह पर इच्छित नियंत्रण प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। इसके पश्चात् हम अगली स्थितियों के लिये तैयार हो जाते हैं जो सूक्ष्म अतीन्द्रिय तथा मानसिक स्तरों पर प्राणों के प्रसार से संबंधित हैं।

कर्मयोग की आवश्यकता

अपनी साधना के आरंभिक दिनों में मैं अपने गुरु के आश्रम में रहता था। गुरु आश्रम छोड़ने के बाद मैंने सोचा था कि मैं एकान्तवास करके आत्मचिन्तन करता रहूँ। अन्ततः सन् 1964 में जब मैंने मुंगेर में आश्रम की स्थापना की तब बहुत से लोग मेरे साथ रहने आये, लेकिन 3-4 महीने से ज्यादा कोई नहीं ठहरा। ऐसा इसलिए हुआ कि आश्रम में उन दिनों कोई काम ही नहीं था। उन लोगों ने आसन, प्राणायाम, मन्त्र, ध्यान आदि के बहुत-से अभ्यास सीखे, मगर इतने से उनके मन में स्थिरता नहीं आई, क्योंकि उनके चित्त शुद्ध नहीं हुए थे।

कुछ वर्षों के बाद हमने आश्रम में बागवानी, टायपिंग, प्रिन्टिंग, लेखन, सम्पादन, किताब छपाई, रसोई घर आदि के काम शुरू किये और तभी से आश्रम में अन्तेवासियों की संख्या हर हफ्ते बढ़ने लगी। अब तो लोग यहाँ कई वर्षों तक ठहर जाते हैं। कभी-कभी लोग पाँच, दस और बारह वर्ष भी टिक जाते हैं और आश्रम जीवन की कठिनाइयों को प्रेम से सहन करते हैं। हर रविवार को मैं अपने संन्यासियों से कहता हूँ कि सभी काम-काज बिल्कुल बंद कर दो। कभी-कभी मैं लगातार तीन दिनों तक सब काम बन्द करा देता हूँ। तब वे लोग बहुत परेशान हो जाते हैं। कई तो मेरे कमरे में आकर कोई काम माँगना शुरू कर देते हैं। अब संन्यासी और साधक विद्यार्थी समझने लगे हैं कि प्रकृति ने मनुष्य में कार्य करने की इच्छा और अनिवार्यता स्वाभाविक रूप से ही दी है। यह जीवन में इच्छा की सकारात्मक भूमिका है।

अगर मनुष्य में इच्छा न होती तो वह कार्य करने को बाध्य ही नहीं होता। अगर वह काम नहीं करता तो उसका मानसिक विकास भी कदापि नहीं होता। जो व्यक्ति तमोगुण और रजोगुण में ही अभी मस्त हैं, उन्हें अनिवार्य रूप से कर्म करना चाहिए। उनके पास अपार संपत्ति और प्रचुर साधन-सुविधाएँ हों तब भी उन्हें काम करना ही चाहिए। चित्त की शुद्धि के लिए कर्म करना आवश्यक है। हाँ, जीवन की सात्त्विक स्थिति में पहुँच जाने पर जब सन्तुलन और स्थिरता आ जाये तब तुम बिना कर्म किये भी रह सकते हो।

इष्ट का निर्देश

हर एक का इष्ट देवता होता है। हमारे इष्ट देवता त्र्यम्बकेश्वर महादेव हैं। हमने दो बार उनसे अनुमति माँगी है। जब हम मुंगेर आए थे तो उनसे अनुमति लेकर आये थे और जब रिखिया आए तो भी उनसे अनुमति लेकर आए। हम 1963 के दिसम्बर में त्र्यम्बकेश्वर गए और उनसे प्रार्थना की, 'योग का कुछ भी काम प्रारम्भ नहीं हो रहा है जैसा गुरुजी ने आदेश दिया है।' हमने सब उपनिषद् पढ़े, गीता पढ़ी, गुरुजी की सेवा की और हम बहुत कुछ जानते हैं। फ्रेन्च में बोल लेते हैं, हिन्दी भी बोल लेते हैं, अंग्रेजी में बोल लेते हैं। जिस विषय पर कहो, बात कर सकते हैं। विज्ञान कहो, मोक्ष कहो, कामशास्त्र कहो, सब पर बोल सकते हैं। हमको यह अहंकार तो था ही, पर हमारा कुछ भी काम प्रारम्भ नहीं हो रहा था।

हमने उनसे प्रार्थना की, 'आप हमें बीस साल मदद कर दो। उसके बाद हम सब कुछ छोड़कर फिर आपकी सेवा में आयेंगे।' इस तरह सन् 1963 में हमने उनसे एक प्रार्थना की थी कि मेरा काम कर दो और वचन दिया कि हम सब छोड़कर आयेंगे। सन् 1983 में हमने सब छोड़ दिया। जितना काम हमें करना था, 1983 तक पूरा कर दिया। योग का बीज सब जगह बो दिया। पौधे भी लगा दिये। लोग भी तैयार कर दिये और सबने इसे स्वीकार भी किया। फिर हम 1989 में त्र्यम्बकेश्वर गए। वहाँ नील पर्वत के नीचे जो गोशाला है, उसमें छोटा-सा एक कमरा ले लिया और उसमें आराम के साथ दो महीने चातुर्मास के बिताये। फिर हमने कहा, 'अब बतलाइये क्या करें?' क्योंकि अब काम तो कुछ था नहीं। रिटायर हो चुके थे। झोला-झण्डा हाथ में था। अब क्या करना है, कुछ समझ में नहीं आया तो पूछा अपने इष्ट से।

दिशा-निर्देश

सितम्बर की चार तारीख को वहाँ बहुत जबरदस्त तूफान आया। वह तूफान महाराष्ट्र से होते हुए गुजरात की तरफ चला गया था। उसी तूफान में रात को हमें आदेश हो गया कि हमें क्या करना है। क्या करना है, वह तो हमें समझ में आ गया, लेकिन उसके लिए कहाँ रहना है? अपनी जगह तो थी नहीं कोई। मुंगेर हम छोड़ चुके थे। हमने सोचा, मुंगेर अब वापस जाना नहीं, कोई सवाल ही नहीं उठता है। तब आठ सितम्बर को हमें इस जगह का आभास हुआ। उसके पेड़ दिखलाई दिये। शिरीष का पेड़ था, पलास का पेड़ था और शब्द आया, 'चिताभूमौ'। हमने सोचा, चिताभूमि तो दो ही हैं। शंकरजी की चिताभूमि वाराणसी है और सतीजी की चिताभूमि देवघर।

हमने देवघर जाने का निश्चय किया और 23 सितम्बर 1989 को हम यहाँ पहुँचे। उस दिन दिन और रात बराबर होते हैं। उसके पहले हमने स्वामी सत्संगी को भेज दिया था कि वह जगह ऐसी है, तुम जाकर पता करो। इष्ट ने तो बस *चिताभूमी* बोल दिया, पर अब चिताभूमि तो बहुत बड़ी जगह होती है। वह स्थान कहाँ है देवघर में, इतने बड़े क्षेत्र में कौन खोजेगा? हमने स्वामी सत्संगी को जगह का विवरण बताकर कहा, 'तुम जाओ, देवघर में कोई ऐसी जमीन है, खरीदो उसको।' वह यहाँ आई। रात को किसी होटल में ठहरी। उसने संकल्प किया कि सबेरे अगर मुझे कोई त्रिपुण्डधारी दिखाई देगा तो उससे पूछूँगी। सबेरे हरलाजोड़ी वाला गिरधारी पंडा उसके सामने आ गया। बस, वह उसको सीधा यहाँ ले आया। केजरीवाल की जमीन थी, उसी दिन उसकी रजिस्ट्री हो गयी। तीन दिन के अंदर भूमि हाथ में आई। हमें टेलीफोन से खबर आ गई। हम वहाँ से चले और 23 तारीख को यहाँ पहुँचे।

भूला हुआ वचन

सन् 1983 में मेरा ऑस्ट्रेलिया में बहुत बड़ा ऐक्सीडेंट हुआ था। किसी को पता नहीं है। मैं एक-डेढ़ महीने बिलकुल हिल-डुल भी नहीं सकता था। मेरे पित्ताशय में छिद्र हो गया था। पसली खिसक गई थी। मैं उठ भी नहीं सकता था। पर मैंने किसी को नहीं बताया, सिवाय स्वामी निरंजन के। भारत में किसी को मालूम नहीं

था। ऑस्ट्रेलिया में भी ज्यादा लोगों को मालूम नहीं था। केवल दो-तीन खास-खास स्वामियों को मालूम था। मैंने कहा, किसी को बोलने की जरूरत नहीं है।

दुर्घटना की खबर मिलने पर स्वामी निरंजन ने पूछा, 'क्या वहाँ आ जाऊँ?' मैंने कहा, 'नहीं, आने की कोई जरूरत नहीं।' ऑस्ट्रेलिया था, इसलिये बचने की संभावना बहुत थी। दुर्घटना सड़क के बीच हाइवे में हुई थी। पन्द्रह मिनट में सब कुछ हो गया। अस्पताल चला गया, जाँच हो गयी। उसी रात डॉक्टर लोगों ने इमरजेंसी वार्ड में सब कुछ ठीक कर दिया। दूसरे दिन हम अपने नर्सिंग होम में आ गए। हिन्दुस्तान होता तो बड़ी मुश्किल होती। ऑस्ट्रेलिया में बहुत सुविधायें हैं।

उसके बाद मैं फिलीपीन चला गया और उसके बाद मुम्बई आया। वहाँ एक होटल में ठहर गया। वहाँ जब ठहरा तो मुझे त्र्यम्बकेश्वर की याद आयी, मैंने उसी समय टैक्सी पकड़ी। उस समय मैं व्हील चेयर में जाता था। त्र्यम्बकेश्वर गया, स्वामी सत्संगी साथ में थी। वहाँ जाकर मैंने नमस्कार किया। नमस्कार करते-करते मुझे एक चीज याद आयी। मैं भूल गया था कि मैंने एक संकल्प लिया था—मेरा काम जब पूरा हो जायेगा तो मैं सब काम छोड़कर आपकी सेवा में आऊँगा। वचन दिया था, पर मैं उसको भूल गया। आश्रम में मुझे इतना फायदा हुआ, इतनी उन्नति हुई, इतनी प्रतिष्ठा मिली कि मैं अपना वह वचन भूल गया था। ऑस्ट्रेलिया में उसका मुझे दण्ड मिला। मैंने उनसे बीस साल का समय माँगा था। बीस साल में मेरा काम पूरा हो गया। सन् 1963 से 1983 तक मैंने बुलडोज़र की तरह काम किया, साधारण ढंग से नहीं। दिन-रात यहाँ कार्यक्रम, वहाँ कार्यक्रम, इसका सिर मुड़ाना, उसका सिर मुड़ाना, इसको नाम देना, उसको नाम देना, इसका पैसा यहाँ, उसका पैसा वहाँ, वह सब। इस बीच मैं भूल गया कि मैंने एक वचन दिया था। आप लोग भी भूल जाते हैं। मुझे दण्ड भी मिला जबरदस्त।

जब मैंने त्र्यम्बकेश्वर में नमस्कार किया, खट् से मुझे याद आ गया कि मैंने 1963 के दिसम्बर को ऐसा बोला था। मैंने वहीं निर्णय लिया कि मैं मुंगेर छोड़ रहा हूँ। मुझे अपराध बोध हो रहा था, मैं अपने विचार में इतना तल्लीन हो गया और यह सोचते-सोचते कि 'मुंगेर छोड़ना है, आगे कहाँ जाना है', मैं सीधे कार में आकर बैठ गया। मैं अपनी व्हील चेयर भूल गया! मेरा शरीर सौ प्रतिशत ठीक हो गया, इतनी-सी देर में! मैं सब दर्द भूल गया। तब तक मैं उठ नहीं सकता था। पैर, हाथ और कमर में बहुत दर्द होती थी। बहुत बड़ी दुर्घटना थी, छोटी-मोटी नहीं। परन्तु जब मनुष्य को अपनी गलती का बोध हो जाता है तब भगवान की कृपा बहुत जल्दी होती है।

भगवान की कृपा

जब भगवान के सामने हमें अपनी गलतियाँ सच्चे दिल से महसूस होती हैं तो उसी क्षण उनकी कृपा हो जाती है। मनुष्य अगर दोषी है तो भगवान के सामने

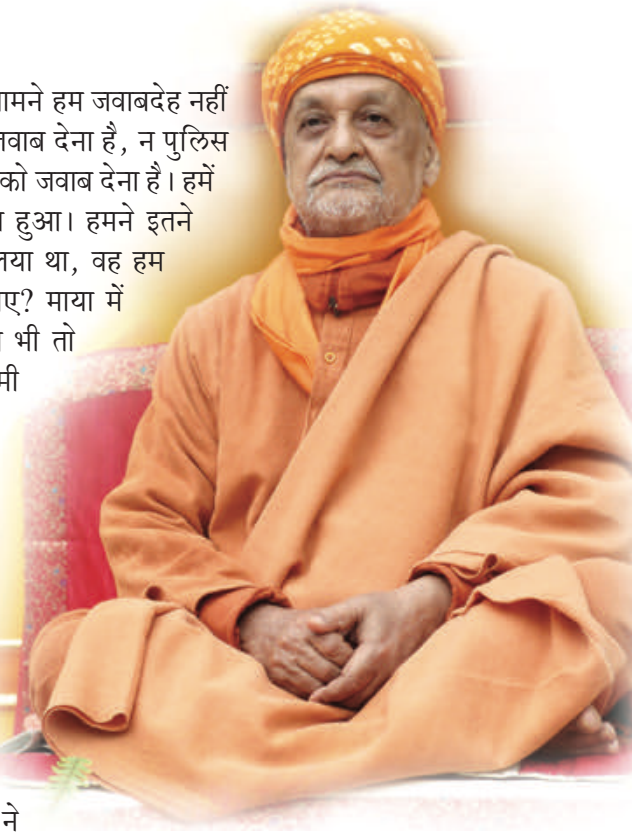

दोषी है। बाकी किसी के सामने हम जवाबदेह नहीं हैं। हमें न तो सरकार को जवाब देना है, न पुलिस को। हमें तो केवल भगवान को जवाब देना है। हमें अपनी गलती का अहसास हुआ। हमने इतने साल पहले जो संकल्प लिया था, वह हम भूल गये थे। क्यों भूल गए? माया में फंसकर। आखिर सफलता भी तो माया ही है न? जब आदमी को कामयाबी मिलती है तो उस कामयाबी में आदमी भूल जाता है। वह भी माया है। ठीक है, योगाश्रम बने, योग का प्रचार हुआ, भारतीय विद्या का विश्व में प्रचार हुआ, बड़े-बड़े धर्माचार्यों ने इस बात को माना, डॉक्टरों और विद्वानों ने माना, नेताओं ने माना, जनता ने माना, ईसाई लोगों ने माना, ईरान-ईराक में मुसलमानों ने माना। पर यह सब माया है जो मनुष्य को भुलावे में रख देती है। 'कल छोड़ दूँगा, परसों छोड़ दूँगा' करते-करते वह कल कभी आता ही नहीं।

जब हमें याद आयी तो हम तुरंत मुंगेर आये और हमने स्वामी निरंजन से कहा कि अब तो मुंगेर छोड़ना पक्का है। श्री केदारनाथ गोयनका हमारे परम मित्र थे, उन्हें हमने बुलाया और कहा, 'हम मुंगेर छोड़कर जा रहे हैं।' उन्होंने कहा, 'ठीक है। कहाँ जायेंगे?' हमने कहा, 'पहले तो वाराणसी जायेंगे, फिर देखेंगे कहाँ जाते हैं।' हमने सोचा कि पहले तीर्थों में घूम लें ताकि खोपड़ी साफ हो जाये। बहुत गंदी हो गई थी। वाराणसी गये, वहाँ गंगा जी में स्नान किया। फिर विंध्यवासिनी गये, तीन बार वहाँ दर्शन किये और फिर उसके बाद नेपाल में पशुपतिनाथ गये। वहाँ तीन दिन उनका दर्शन किया। फिर उसके बाद त्र्यम्बकेश्वर आये। इसके आगे की घटना आप लोगों को मालूम है। अंत में जब हम रिखिया आये तो हमें भगवान का स्पष्ट आदेश हुआ कि तपस्या संन्यासी के लिये प्रायश्चित है, संन्यासी जो कर्म करता है उसका उसे प्रायश्चित करना होता है। इसलिए हमने पंचाग्नि तपस्या की।

युवा-अपराध और योग

क्या योग युवा-अपराधियों की सहायता कर सकता है?

यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। बच्चे और युवा समाज-विरोधी व्यवहार क्यों करने लगते हैं, वे अनेक अपराधों में क्यों लग जाते हैं और विध्वंसक कार्य क्यों करते हैं? विभिन्न लोगों ने इसके अलग-अलग कारण बतलाए हैं, पर मेरा अपना स्वतंत्र सिद्धान्त है। देखो, सात या आठ साल की उम्र में शरीर की पीनियल ग्रंथि नष्ट होने लगती है और तब इसके परिणामस्वरूप पिट्यूटरी ग्रंथि के कार्यों को नियंत्रित करने वाला प्रमुख 'ताला' खुल जाता है। इस ताले के खुल जाने से पिट्यूटरी हॉर्मोन तैयार होने लगते हैं और वे रक्त में प्रवेश करते हैं। विध्वंसक, समाज-विरोधी और अपराधी आचरण पीनियल ग्रंथि के क्षय की प्रक्रिया शुरू होते ही कभी भी प्रकट हो सकते हैं और ये व्यक्ति के यौवनारम्भ एवं यौन क्रिया-कलापों का नियमन करने लगते हैं। जब तक पीनियल ग्रंथि स्वस्थ है और जब तक इसे नष्ट नहीं होने दिया जाता, तब तक यौन चेतना के प्रथम आगमन में विलंब होगा और वह विलंब कल्याणकारी होगा।

आजकल बच्चों के शरीर में पीनियल ग्रंथि समय से पूर्व नष्ट होने लगती है और तब पिट्यूटरी ग्रंथि स्वाभाविक रूप से सक्रिय होने लगती है। परिणामस्वरूप रक्त में विभिन्न प्रकार के उत्तेजक हॉर्मोन बहुत मात्रा में पहुँच जाते हैं। ये हॉर्मोन विभिन्न ग्रंथियों और नाड़ी मंडल को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार से बच्चों का व्यवहार प्रभावित होता है, उनके मानसिक और प्राणिक क्षेत्रों के बीच असंतुलन पैदा होता है। जब प्राणिक और मानसिक क्षेत्रों का परस्पर सामंजस्य बिगड़ जाता है तब चुल्लिका और एड्रीनल ग्रंथियाँ परस्पर सहयोग से कार्य नहीं कर पातीं।

कुछ आवश्यक शारीरिक प्रौढ़ता आने पर ही शरीर में यौन रसों का स्राव शुरू होना चाहिए, मगर आजकल यह अपेक्षाकृत जल्दी शुरू हो जाता है। मानसिक एवं भावनात्मक परिपक्वता का अभाव होने के कारण बच्चे ऐसे शक्तिशाली हॉर्मोन के प्रभाव को बर्दाश्त करने में सक्षम नहीं हो पाते। इस हालत में बच्चे विभिन्न प्रकार के विचित्र भावों व विचारों को विकसित करते रहते हैं। उन पर नियंत्रण या सन्तुलन लाने हेतु प्रतिरोधिका-शक्ति उनके पास नहीं है।

हर व्यक्ति के अन्दर नियंत्रक तत्त्व होता है। इसीलिए किसी की हत्या का विचार मन में आये तो बार-बार मन उसमें उलझता है। कुछ समय बाद एक दूसरा विचार आता है जो पहले वाले का विरोध करता है। मन में इसी तरह हमेशा संघर्ष चलता रहता है। यह संघर्ष ही नियंत्रण है, नियंत्रक-तत्त्व है। यही प्रौढ़ता का प्रमाण है। जैसे आत्महत्या करने के लिए तुम जहर पीना चाहो तो उस समय कभी सोचते हो—नहीं, फिर हाँ, फिर नहीं; इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

कुछ बच्चों में यह बात नहीं होती, वे किसी एक विचार में ही अविवेकपूर्ण ढंग से अटके रहते हैं। वे विवेक की शक्ति की उपेक्षा करते हैं। उनमें विवेक है ही नहीं, क्योंकि शारीरिक, मानसिक और हॉर्मोन सम्बन्धी परिपक्वता का उनमें विकास होना अभी बाकी है।

एड्रिनल ग्रंथियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं और मानव शरीर में उनके प्रभाव व्यापक हैं। चुल्लिका ग्रंथि भी बहुत सार्थक ग्रंथि है जो व्यक्ति की भावनाओं के नियंत्रण में प्रभावशाली सहयोग देती है। अगर इन ग्रंथियों में असन्तुलन हो जाये तो बताओ भला इन बच्चों पर क्या बीतेगी? ग्रंथियों का अव्यवस्थित विकास व्यवहार को प्रभावित करता है।

इसलिए योग में प्रथम चीज है पीनियल ग्रंथि को यथासंभव स्वस्थ बनाये रखना। जब तक तुम्हारी पीनियल ग्रंथि स्वस्थ है, तब तक यौन ग्रंथियों पर तुम्हारा नियंत्रण बना रहेगा। यदि इन ग्रंथि-रसों का उत्पादन बहुत कच्ची उम्र में होने लगे, जब तुमने बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक परिपक्वता विकसित नहीं की है, तब तुम्हारे मानसिक सन्तुलन की क्या स्थिति रहेगी? सोचो, अगर बारह साल का बच्चा पचास साल के आदमी के समान जानने-सोचने लगे तो उसके मानसिक सन्तुलन की क्या स्थिति होगी? अगर बच्चा अल्पवयस्क हो और उसकी पीनियल ग्रंथि नष्ट हो गयी हो तो शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तत्त्वों के बीच सन्तुलन नहीं बैठ पायेगा। इसी वजह से बाल या युवा अपराधी बन जाते हैं।

इस संकट को टालने के लिए प्राचीन भारत में सात या आठ वर्ष की अवस्था में बच्चे तीन विशिष्ट योग साधनाओं में दीक्षित किये जाते थे। पहली साधना थी सूर्यनमस्कार, दूसरी थी नाड़ीशोधन प्राणायाम और तीसरी थी गायत्री मंत्र। आजकल यह पद्धति यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार के साथ ही लागू की जाती है। दुर्भाग्यवश इस श्रेष्ठ दीक्षा के अर्थ और महत्त्व को अब कम ही लोग समझते हैं। लोग सोचते हैं कि यह एक सामाजिक कर्मकाण्ड से ज्यादा और कुछ नहीं है। वे इसे गंभीरता से नहीं लेते।

वास्तव में ये तीन महत्त्वपूर्ण यौगिक अभ्यास हैं। इन्हें सात-आठ वर्ष की उम्र से ही, जब पीनियल ग्रंथि का क्षय प्रारंभ होने लगता है, बच्चों को सीखना चाहिए। इससे बच्चे अपने विकासशील शरीरों में बाधक तत्त्वों पर नियंत्रण और संतुलन रख सकेंगे।

मोक्ष नहीं, सेवा

साधु-महात्माओं का जन्म अपने मोक्ष के लिये नहीं होता। उनका जन्म दूसरों के हित के लिये होता है।

वृक्ष कबहुँ ना फल भखैं नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर ॥

मोक्ष की आकांक्षा गृहस्थ करते हैं क्योंकि वे दु:खी हैं। जो बंधन में है, उसको मोक्ष चाहिये। जो समझता है कि मैं जेल में हूँ, वह जेल से छूटना चाहता है। अगर तुम्हें दुनिया बंधन लगे, तब तुम बंधन से छूटना चाहोगे, मोक्ष माँगोगे। मगर हम मोक्ष क्यों माँगेंगे? हमको तो समझ में नहीं आता। यहाँ रहे तो ठीक, वहाँ रहे तो ठीक। भगवान के घर पहुँचेंगे, उनकी सेवा में रहेंगे तो भी ठीक है और रिखिया में भी रहेंगे, तो यहाँ भी ठीक है। कल कहीं दूसरी जगह चले जायेंगे तो वहाँ भी ठीक है। हर हाल में, हर देश में, हर वेश में, हर ढंग में एक समान रहते हैं।

इसलिए संत लोगों को मोक्ष की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मोक्ष तो उनकी आवश्यकता है जो बंधन में पड़े हैं, जो दु:ख में पड़े हैं, जो रोते हैं, कराहते हैं, जिनको निराशा है। उनको चाहिये मोक्ष। जो बीमार है उसको चाहिये डॉक्टर।

नदी अपना पानी पीती है क्या? बस इसी को परमार्थ कहते हैं। आम, अमरूद, सेब, पपीता, कटहल, सब्जी, टमाटर, आलू खुद को नहीं खाते। सब तुम्हारे लिये हैं। इसको कहते हैं परमार्थ। जो दूसरों के काम आये उसको कहते हैं परमार्थ, और जो दूसरों के काम न आये उसको कहते हैं स्वार्थ। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है कृपणता, इसलिये मनुष्य को देना सिखाना पड़ता है।

सुनहरी यादें

संन्यासी शांतिगिरि, बेंगलुरु

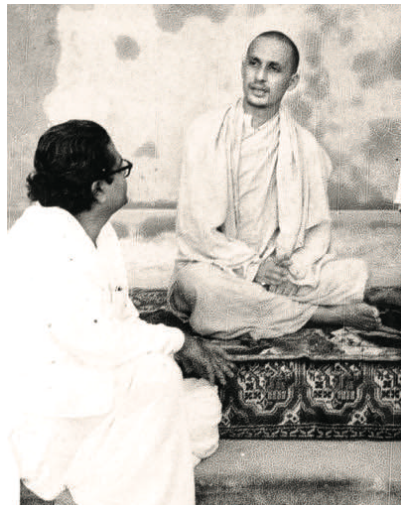

बात उन दिनों की है जब मैं पैदा भी नहीं हुई थी। अपने माँ-पिताजी के मुख से सुनी हुई बातें हैं, पर उन्होंने इस तरह से सुनाया कि लगता है जैसे पूरा दृश्य देखा हो। यह बात सन् 1957-58 की होगी। एक युवा संन्यासी, स्वामी सत्यानन्द जी बाँधा बाजार के नगर-सेठ बलभद्र अग्रवाल जी के बगीचे में चातुर्मास के लिये ठहरे हुये थे, और मेरे पिताजी प्राय: रोज उनके पास जाते थे।

वहाँ छोटी-सी पहाड़ी है, जिसकी तलहटी व तालाब के किनारे में ही बगीचा है। एक तरफ तालाब व दूसरी ओर पहाड़ी, बड़ा ही रमणीय स्थान हुआ करता था। यह मेरा देखा हुआ स्थान है। वहीं बगीचे में एक छोटा-सा कमरा था जिसमें स्वामीजी रहते थे। पहाड़ी पर छोटा-सा हनुमान जी का मंदिर है। उन दिनों वहाँ सीढ़ी नहीं हुआ करती थी। उस मंदिर में स्वामीजी रोज जाते थे। दिन के समय उनका सत्संग-कीर्तन भी होता था। मेरी बड़ी दीदी और अन्य लोग भी उनके साथ कीर्तन करते थे।

मुझे याद है जब मैं 5-6 साल की थी, तब स्वामीजी ने अपना एक कार्यक्रम महेश्वरी भवन में रखा था, जो राजनाँदगाँव में हमारे घर के सामने ही है। वहाँ वे प्रोजेक्टर से योगासन की फिल्म दिखाया करते थे। कुछ विदेशी संन्यासी भी उनके साथ रहते थे। उस समय की उनके चेहरे की तेज व चमक आज भी मुझे याद है। मैं तब से उनसे प्रभावित हूँ और बचपन से ही उन्हें अपना गुरु माना है।

वे आसपास के गाँवों में भी प्रोजेक्टर ले जाकर योगासन वगैरह की फिल्म गाँववालों को दिखाया करते थे। उन्होंने मुंगेर आने से पहले अपना काफी समय राजनाँदगाँव व उसके आसपास के इलाके में बिताया है। मुझे अच्छी तरह याद है, 1974-75 में म्यूनिसपल हाई स्कूल ग्राउण्ड में बहुत बड़ा योग सम्मेलन आयोजित किया था, जिसमें पूरा शहर उमड़ पड़ा था।

उनका एक प्रिय कीर्तन मैं अपने पिताजी के मुख से हमेशा सुनती थी—अगड़ बम अगड़ बम, बाजे डमरू, नाचे सदाशिव जगत गुरु...। इस तरह उनसे जुड़ी बचपन की कई सुनहरी यादें हैं जो भुलाए नहीं भूलतीं।

योग और बच्चे

बच्चों को किस अवस्था में योग शुरू करना चाहिए?

आठ साल की उम्र में ही उन्हें सूर्यनमस्कार, मंत्र और प्राणायाम सिखाना चाहिए। इन तीनों अभ्यासों को अनेक वर्षों तक जारी रखना चाहिए। जब यौवनारंभ के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगें, तब अभ्यासों को बदलो और उन्हें ज्यादा आसन-प्राणायाम बताओ। तीनों अभ्यासों को आठ साल की उम्र में आरंभ कर देने से यौवनारंभ में स्वाभाविक रूप से दो या तीन वर्ष का विलम्ब हो जायेगा। साधारणत: यौवनारंभ का आगमन बारह से चौदह साल के बीच होता है और चौदह से सोलह के बीच स्थिर होता है। लेकिन यदि बच्चा आठ वर्ष से ही योगाभ्यास करने लगे तो यौवनारंभ का लक्षण चौदहवें वर्ष में आरंभ होगा और स्थिर होगा अठारहवें वर्ष में। जब ये लक्षण प्रकट होने लगें, तब वह किशोर बालक सभी मुख्य आसनों को शुरू कर दे।

इक्कीस साल की आयु के बाद ही ध्यान के अभ्यास सिखाये जाने चाहिए। यह उन बच्चों के लिए लागू होता है जो आठ साल से ही योगाभ्यास करते आ रहे हैं। इक्कीस वर्ष तक ध्यान की सरल विधियों, जैसे कीर्तन, नामोच्चारण और मानसिक दर्शन का प्रयोग करो।

क्या ये अभ्यास केवल लड़कों के लिए हैं? क्या लड़कियाँ भी इन्हें कर सकती हैं?

यह कहना ठीक नहीं कि ये अभ्यास लड़कियों के लिए नहीं हैं। वैदिक काल में लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही संध्या और गायत्री में दीक्षित होते थे। बाद में हमारे सांस्कृतिक ह्रास-काल में ये परिवर्तन किये गये।

क्या बच्चों के लिए मंत्र और संगीत सहायक हैं?

मंत्र के द्वारा मस्तिष्क को विश्राम देना प्रत्यक्ष ज्ञान की विकसित पद्धतियों में से एक है, किन्तु यंत्र इससे भी अधिक स्पष्ट पद्धति है। वह विश्राम की प्रक्रिया नहीं है, वह तो जागरण की प्रक्रिया है। कुछ विधियाँ ऐसी हैं कि वे बच्चों को विश्राम में मदद करने के लिए संगीत का प्रयोग करती हैं। यह बुरा तो नहीं है, मगर एक निश्चित मात्रा में उस विधि से अकर्मण्यता भी उत्पन्न होती है। अधिकांश संगीत मनुष्य के मन को निष्क्रिय बना देते हैं, यद्यपि कुछ उसे सक्रिय भी करते हैं। कुछ संगीत बच्चों के लिए बहुत जागरणशील होते हैं।

यंत्र का अन्तर्दर्शन पूर्ण सक्रिय व क्रियाशील पद्धति है। जब तुम यंत्र पर सजगता का अभ्यास करते हो तब तुम्हारा मन लगातार उच्च तरंगों के प्रतिरूपों याने संस्कारों

को पैदा करता है। वह कभी भी अपकर्ष या ह्रास में नहीं रहता है। किसी विशेष यन्त्र पर धारणा करने से मस्तिष्क में उसी प्रकार का संस्कार प्रकट होता है जो चेतना को उच्च स्तर पर ले जाता है।

अत: हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि चेतना-उत्थान की इस विधि को मस्तिष्क में क्रियाशील बनाए रखें। मैं संगीत जानता हूँ और वह मुझे प्रिय है, मगर वह मन को अकर्मण्य बना देता है। निष्क्रियता योग का उद्देश्य हो ही नहीं सकता, विशेषकर तब जबकि सारा प्रयोजन है बच्चे की प्रतिभा का उत्थान करना। बच्चे को सिखलाया जाने वाला हर अभ्यास ऐसा होना चाहिए कि वह उनकी चेतना में हलचल पैदा करे अथवा उसमें उत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ हो।

इसका मतलब यह नहीं लगा लेना कि योग में संगीत का समावेश नहीं है। यदि संगीत का अभ्यास ठीक से किया गया तो मस्तिष्क में वह अपना संस्कार स्वयं उत्पन्न करता है। मस्तिष्क की संरचना में वह क्रमिक उत्थान ला सकता है, लेकिन हमें पहले तो यह स्पष्ट करना होगा कि संगीत का हम क्या मतलब समझते हैं। यदि संगीत अव्यवस्थित अथवा कामोत्तेजक हुआ तो हमें नहीं मालूम कि वह क्या असर डालेगा।

क्या दो साल के बच्चे का मंत्र सीखना उचित है?

नहीं, अच्छा होगा कि अभी उस बच्चे को कुछ न सिखाया जाये। हाँ, लेकिन इसके बदले तुम वही अभ्यास करो जो बच्चे को सिखाना चाहते हो। मंत्र या ध्वनि के सहयोग से अगर तुम उपनिषद् का उच्चारण करते हो और रोज सुबह चार-पाँच बजे उठ जाते हो, तो बच्चा इन सब सुन्दर आदतों को आत्मसात् कर लेगा क्योंकि वह तो एक फोटो कैमरे के समान है।

बच्चे अपने चारों ओर के वातावरण के प्रभाव से और अपने आस-पास के व्यक्तियों से निश्चित रूप से प्रभावित होते हैं। अगर तुम खुद ही रोते, चिल्लाते, चीखते हो तो अपने बच्चों को क्या सिखा सकते हो? अगर तुम हताश, निराश, उदास व्यक्ति हो, और आसानी से उत्तेजित हो जाते हो, तो अपने बच्चे के लिए तुम कौन-सा आदर्श पेश करोगे? तुम जो चीजें अपने बच्चों को सिखाना-बताना

चाहते हो, हो सकता है कि ठीक उन्हीं चीजों की कमी तुममें खुद भी हो। इसलिए उत्तम उपाय यह है कि बच्चों के लिए निर्धारित आवश्यक मार्ग का अभ्यास माता-पिता स्वयं करें। बच्चे उस जीवन-पद्धति को अपने आप सीख लेंगे और तदनुसार आचरण भी करने लगेंगे।

बच्चों पर पड़ने वाले गलत प्रभावों के मुकाबले के लिए हम क्या कर सकते हैं?

बच्चों पर पारिवारिक जीवन का गहन प्रभाव पड़ता है। अत: जिसे आवश्यक रूप से सर्वप्रथम करना है, वह है पारिवारिक संस्कृति का पुनर्गठन। पिछले बीस वर्षों से पारिवारिक ढाँचा विघटन की प्रक्रिया से गुजर रहा है, लेकिन अब हमें उसे तुरन्त रोककर सुन्दर पारिवारिक जीवन को महत्त्व देना शुरू करना है।

बच्चों पर सबसे अधिक सुधारात्मक प्रभाव दूसरे बच्चों का पड़ता है। बच्चा जब भी गलती करता है तब अगर दूसरे बच्चे उसकी गलती बता दें, तो वह उस पर विचार करता है। अगर माँ-बाप उसे गलती बतायें तो वह उनकी परवाह नहीं करता। इसलिए परिवार में उचित पद्धति होनी चाहिए।

दूसरी बात, विद्यालयों को एक तरह से पुन: पूर्वी संस्कृति की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है। भारत में हमारे पास गुरुकुल पद्धति है। बच्चे आश्रमों में गुरु के साथ कई वर्षों तक रहते हैं। ये आश्रम शहरों के कोलाहल से दूर होते हैं। सम्पूर्ण विद्यालय की व्यवस्था बच्चे स्वयं देखते हैं। वे सुबह जल्दी उठते हैं,

स्नान करते हैं, प्रार्थना करते हैं, आसन-प्राणायाम आदि करते हैं और कर्मयोग में जुट जाते हैं।

क्या योग में बच्चों को ऊपर लाने अथवा उनका उचित विकास करने के लिए कुछ सामान्य नियम हैं?

अभिभावक लोग बच्चों के विषय में बहुत अधिक चिन्ता करते हैं। बच्चों को अन्य बच्चों के साथ छोड़ देना चाहिए, उनके स्वाभाविक विकास को उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए। अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे उनकी देखभाल तब तक करें, जब तक कि वे नादान हैं, ताकि वे किसी कठिनाई में न पड़ें। मैंने स्वयं इसे देखा है और आप में से अधिकांश लोग भी इस बात से सहमत होंगे कि अभिभावक बच्चों के बारे में इतनी चिन्ता करते हैं कि वे बिगड़ जाते हैं।

बच्चों का पालन कैसे किया जाये जिससे वे अहंकारी और विध्वंसक न बनें?

बच्चों को दबाना नहीं चाहिए। उनके व्यक्तित्व को विकसित होने देना चाहिए। अहं को भी विकसित होना चाहिए लेकिन उनकी आध्यात्मिक परिपक्वता के लिए तुम मार्ग बना सकते हो। इसके लिए तो तुम्हें स्वयं आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहिये। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो उन्हें उनके स्वभावानुसार चलने दो। अपनी ओर से कोई विक्षेप मत डालो। अपने स्वयं के ढर्रे पर चलाने के लिए बच्चों पर दबाव नहीं डालना चाहिए। उनके व्यक्तित्व को तुम अपने अनुसार परिवर्तित करने की कोशिश मत करो। उन्हें निश्चित रूप से अपने स्वभाव का अनुसरण करना चाहिए।

अभिभावक कैसे अच्छी आदतों को प्रोत्साहित और गलत आदतों को निरुत्साहित करें?

तुम्हें आदर्श स्थापित करना होगा और बच्चे स्वत: उसका अनुपालन करेंगे। बच्चा जब गर्भ में हो, तब उसे वहीं प्रशिक्षण देना चाहिए। उसके जन्म लेने के बाद उसे बदलने और ब्रेन-वॉश करने के बजाय यह प्रयास बेहतर है। गर्भस्थ जीवन अधिक शक्तिशाली और संवेदनशील होता है, क्योंकि वहाँ तुम डी.एन.ए.अणुओं के सम्पूर्ण ढाँचे को बदल सकते हो।

शिक्षा पद्धति का आधार क्या होना चाहिये?

विद्यालय पद्धति आत्मानुशासन पर आधारित हो, बाह्य अनुशासन के आतंक पर नहीं। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक योगदर्शन को स्वयं आत्मसात् करे।

इससे उसकी आन्तरिक शक्ति विकसित होगी। तभी वह अनुशासन की प्रेरणा बच्चों को दे सकेगा। यह उपाय अधिक प्रभावशाली और स्थायी होगा।

योग किस प्रकार आधुनिक अशान्त युवावर्ग की सहायता कर सकता है?

युवावर्ग का योग के साथ संपर्क अवश्य होना चाहिये। योग से वे मानसिक शान्ति एवं एकाग्रता प्राप्त करेंगे और उस शान्ति को विश्व भर में प्रसारित करेंगे। आज के बुद्धिवादी युवावर्ग के पास कोई आध्यात्मिक बंधन, गुरु या धर्म नहीं है, इसलिए वे हिप्पी बन जाते हैं, गाँजा पीते हैं और एल.एस.डी.लेते हैं। वे सत्य का अनुसंधान जरूर करना चाहते हैं, लेकिन समाज उन्हें कोई मार्ग नहीं सुझा पा रहा है। विगत डेढ़ सौ वर्षों में समाज में आध्यात्मिक ह्रास बहुत हुआ है।

यदि योग आचरण में आ जाता है तो समाज व्यवस्थित ढंग से विकास करेगा। हजारों लड़के-लड़कियों को जीवन का व्यावहारिक मार्गदर्शन मिलेगा और वे लोग सत्य-पथ को अपनाना सीखेंगे। अगर बच्चे गिरजाघर या मंदिर में नहीं जाना चाहते तो उन्हें ध्यान लगाने दो। यदि उन्हें बाहरी विश्वास नहीं, तो आन्तरिक विश्वास अवश्य होगा। आज के बच्चों के लिए और कल की सभ्यता के लिए योग एक युग-निर्माता दर्शन है।

बहुत-से संन्यासियों में बालसुलभ गुण क्यों होते हैं?

योग में एक सिद्धान्त है—तुम्हारी उम्र ज्यादा हो सकती है, तुम कितना भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हो, किन्तु व्यक्तित्व का कुछ भाग ऐसा है जो सदा बालवत् ही रहना चाहिए। इसलिए योग में आज्ञा चक्र पर धारणा का अभ्यास किया जाता है। आज्ञाचक्र पीनियल ग्रन्थि है और यदि यह बराबर कार्यरत रहे तो तुम बालक सदृश बने रहोगे। अधिकतर लोगों में पीनियल ग्रंथि आठ वर्ष की आयु के बाद से ही नष्ट होने लगती है। आज्ञाचक्र पर धारणा करके इस ग्रंथि को क्रियाशील बनाये रखना संभव है।

यदि तुम्हारी अवस्था 75 वर्ष की है और तुम्हारा आज्ञाचक्र या पीनियल ग्रंथि अभी भी स्वस्थ है तो तुम शरीर से 75 साल के हो सकते हो और साथ-साथ आठ साल के बच्चे भी। लगभग सभी तेजस्वी लोगों का व्यक्तित्व बालक का-सा होता है और शरीर प्रौढ़ का। इसलिए वे उच्च चेतना के साथ संपर्क बनाये रखने में समर्थ होते हैं।

दुनिया की नियति नन्हे, निर्दोष बच्चों पर निर्भर है। अगर तुम अंधेरी निशा में आशा की किरण देखना चाहते हो तो बड़े-बूढ़ों की बजाय इन बच्चों को अध्यात्म की ओर उन्मुख करना होगा।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रद्धा की जागृति

श्रद्धा मनुष्य की विशिष्ट सम्पदा है। मनुष्य के अस्तित्व के पीछे श्रद्धा मुख्य तत्त्व है। मनुष्य को जिन्दा रखने के लिये केवल भोजन और धन आवश्यक नहीं है। मनुष्य श्रद्धा के बल पर ही जीवित है।

निर्मल लोगों में श्रद्धा होती है। एक बार ईसा मसीह की आज्ञा से पीटर समुद्र पर चलने लगे। परन्तु जैसे ही उन्हें शंका हुई, वे डूबने लगे। जल पर चल सकना श्रद्धा का चमत्कार था। जितनी देर उनकी श्रद्धा परिपूर्ण रही, वे पानी पर चले, पर जैसे ही श्रद्धा डगमगाई, वे डूबने लगे। इस प्रकार संत-महात्माओं के जीवन में श्रद्धा पर आधारित अनेक घटनाएँ देखने को मिलती हैं। यदि हम अपने भीतर निर्दोष श्रद्धा को बनाये रखें, उसे बुद्धि द्वारा भ्रष्ट न होने दें तो जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हम न कर सकें।

यदि आप किसी भी धर्म के संत-महात्माओं के जीवन पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि वे आश्चर्यजनक रूप से श्रद्धावान् थे, भले ही वे समाज के गरीब तबके से आए थे और प्राय: अनपढ़ थे। ईसा मसीह बढ़ई थे, रामकृष्ण परमहंस पचास रुपये मासिक वेतन पर दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में पुजारी थे। इन महापुरुषों की धन-दौलत क्या थी? क्या वह बुद्धि या राजनैतिक सत्ता थी? नहीं। उनकी सम्पत्ति पवित्र श्रद्धा थी। यदि मुझमें श्रद्धा है तो मैं पहाड़ को भी हिला सकता हूँ, समुद्र को भी सुखा सकता हूँ। श्रद्धा देवत्व की चिनगारी है जो प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात रहती है।

मेरी मान्यता है कि ईश्वर और श्रद्धा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस क्षण आपमें श्रद्धा का उदय होता है, उसी क्षण ईश्वर का साक्षात्कार होता है। इस बात को अन्य ढंग से भी कह सकते हैं कि ईश्वर निराकार है, वह एक लोकोत्तर अनुभव है। आपके चर्मचक्षु तथा सीमित मन उसे देख अथवा समझ नहीं सकते। आप अपनी सीमित चेतना द्वारा उसे प्राप्त नहीं कर सकते। परन्तु जब श्रद्धा जागती है तो ईश्वर-साक्षात्कार बिना किसी प्रयास के हो सकता है।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व का अंश होता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी बीज रूप में रहती है। आवश्यकता उसे विकसित और विस्फोटित करने की है। यदि आप प्यासे हैं और नदी के किनारे खड़े होकर पानी-पानी की रट लगायें, तो इससे आपकी प्यास नहीं बुझेगी। इसके लिए आपको नदी में उतरकर पानी पीना होगा। श्रद्धा के महत्त्व को मात्र समझ लेने से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके विस्फोट की प्रक्रिया बड़ी धीमी होती है। श्रद्धा का प्रारम्भ गुरु से और अन्त ईश्वर में होता है। गुरु एक मनुष्य होते हैं। वे भौतिक शरीर में एक महान् आत्मा होते हैं। जब आप श्रद्धा को बढ़ाना चाहते हैं तो वह आँखों से दिखने वाले किसी स्वरूप के आसपास

ही पनप सकती है। यही कारण है कि श्रद्धा की यात्रा गुरु अथवा सन्त-महात्मा से प्रारम्भ होती है। थर्मामीटर के पारे की तरह एकाएक श्रद्धा विकसित नहीं हो सकती।

यदि आप अपने बच्चे को उच्च शिक्षा देना चाहते हैं तो क्या सर्वप्रथम आप उसे विश्वविद्यालय में दाखिला दिलायेंगे? नहीं। पहले आप उसे प्राइमरी स्कूल की प्रारम्भिक कक्षा में भर्ती करते हैं। फिर वह बच्चा प्रतिवर्ष परीक्षाएँ पास करता हुआ स्कूल, कॉलेज तथा अन्त में विश्वविद्यालय तक पहुँचता है। इसी प्रकार श्रद्धा की यात्रा गुरु से प्रारम्भ होकर ईश्वर में समाप्त होती है।

बुद्धि श्रद्धा की सबसे बड़ी दुश्मन है। मैं तो उसे श्रद्धा के लिए विष कहता हूँ। यही कारण है कि शास्त्र कहता है, 'बालवत् बनो।' वह बचकानी हरकतें करने की सलाह नहीं देता, बल्कि बालवत् का अर्थ है, शिशु की पवित्रता, योगी का ज्ञान और दयालु की उदारता।

मेरा जीवन और मिशन, दोनों श्रद्धा से प्रेरित हैं। मुझे स्वयं में, लोगों में और मानवता के भविष्य में श्रद्धा है। यदि यह सही न उतरे तब भी मुझे चिन्ता नहीं। मैं हर एक कार्य को केवल बुद्धि से करने में विश्वास नहीं रखता। मैं अपने चालीस-पैंतालीस वर्षों के अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि जीवन तथा मानवता की समस्याओं को केवल बौद्धिक उपायों से हल करने का प्रयास निरर्थक है।

अन्त में यही कहना चाहूँगा कि श्रद्धा के शब्दकोश में 'असंभव' नामक कोई शब्द नहीं है। श्रद्धा और आत्मविश्वास के आधार पर कुछ भी असंभव नहीं है। श्रद्धा के द्वारा असाध्य बीमारी दूर की जा सकती है, अपने बुरे-से-बुरे स्वभाव को रातों-रात बदला जा सकता है। भले ही जीवन में आपके साधन कितने ही सीमित क्यों न हों, श्रद्धा की उपलब्धि होते ही आप आत्म-साक्षात्कार जैसी दुर्लभ गति प्राप्त कर सकते हैं। अब आप ही बताइए कि जब आपके पास श्रद्धा जैसी निधि हो तो फिर आपके लिए क्या असंभव हो सकता है?

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

ध्यान–तंत्र के आलोक में

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 350, ISBN: 978-81-85787-63-3

यह ध्यान के प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए एक स्पष्ट एवं बोधगम्य पुस्तक है। इसका उद्देश्य है अभ्यासी के समक्ष संभावनाओं के द्वार खोलना, आवश्यक तैयारी की जानकारी देना और साथ-ही ध्यान का अनुभव प्राप्त करने के लिए व्यावहारिक विधियों से अवगत कराना। सैद्धान्तिक विवेचन एवं अभ्यास के बीच सहज संतुलन रखते हुए, इस अनुपम पुस्तक में उपनिषदों, तंत्रों एवं पूर्व में विकसित योग की अनेक पद्धतियों में प्रतिपादित ध्यान के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। साथ-ही स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षण प्रक्रिया को यथावत् प्रस्तुत किया गया है।

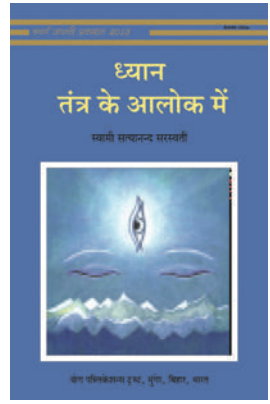

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

www.satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर तथा Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में उपलब्ध

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ ऑनलाइन प्रस्तुत की जा रही हैं।

बिहार योग विकी

www.yogawiki.org

मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर ऑनलाइन विश्वकोश प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ सभी साधकों के लिए यौगिक शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध होंगी।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, *ए.पी.एम.बी.* अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है।
- *बिहार योग एप्प* साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2019-2020

दिसम्बर 18-22	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 27-29	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 30	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 9-13	योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 9-13	योग कैप्सूल-गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 23-27	योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 23-29	पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)
फरवरी-मार्च	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)
मार्च 14-20	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 1-30	एकमासिक योग प्रशिक्षण (हिन्दी)
अप्रैल 4-8	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अप्रैल 13-19	राज योग यात्रा 1 एवं 2
सितम्बर 19-25	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अक्टूबर 1-30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1 (अंग्रेजी)
नवम्बर - जनवरी 2021	त्रिमासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 2-8	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 21-27	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
दिसम्बर 2-6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 3-6 2021	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net **कार्यक्रमों एवं प्रशिक्षणों के आवेदन-पत्र यहाँ उपलब्ध हैं**

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।